

कल्याण

मूल्य ८ रुपये



गीताप्रेस, गोरखपुर

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या



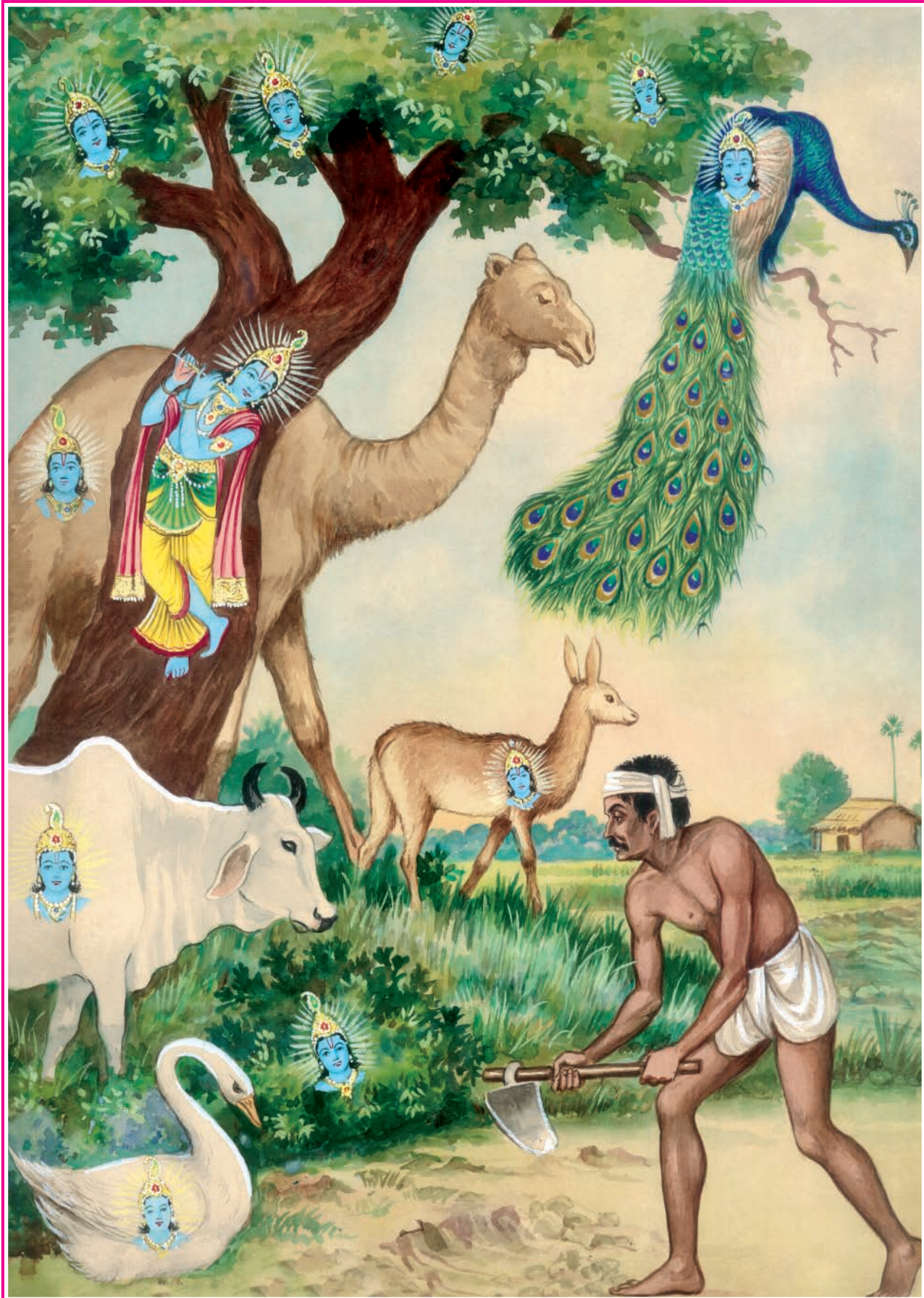
COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



सबमें भगवद्-दृष्टि

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥

वर्ष

८९

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, दिसम्बर २०१५ ई०

संख्या

१२

पूर्ण संख्या १०६९

गीताका सन्देश—सबमें भगवद्-दृष्टि

सब भूतोंमें स्थित आत्मा है, आत्मामें है भूत अशेष ।
योगयुक्त सबमें समदर्शी योगीकी यह दृष्टि विशेष ॥
जो मुझको सर्वत्र देखता, मुझमें देखे सारा दृश्य ।
उसके लिये अदृश्य नहीं मैं, वह भी मुझसे नहीं अदृश्य ॥
सब भूतोंमें स्थित मुझको जो भजता है रख एकीभाव ।
वह योगी रह सब प्रकारसे मेरे हित करता बर्ताव ॥
जो अपनी ही भाँति देखता है सबमें सुख-दुःख समान ।
अर्जुन! वह माना जाता है योगी सबसे श्रेष्ठ महान् ॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, दिसम्बर २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गीताका सन्देश—सबमें भगवद्-दृष्टि	३	१५- गायोंकी चोरी रोकना आवश्यक	
२- कल्याण	५	(श्रीमुलखराजजी विरमानी)	२९
३- राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या [आवरणचित्र-परिचय]	६	१६- भगवान्से नाता जोड़नेका महत्त्व	
४- प्रेमकी विलक्षण एकता		(दिव्यज्योति पूज्या देवकी माताजी)	
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	[प्रेषक—श्रीअरविन्द शारदाजी]	३०
५- सौ करोड़ रुपयोंका दान [प्रेरक प्रसंग]		१७- व्यावहारिक अध्यात्म [प्रेषक—हरिकृष्ण नीखरा (गुप्त)]	३१
(श्रीमहावीरप्रसादजी नेवटिया)	९	१८- जड़ी-बूटियोंकी शिरोमणि—तुलसी	
६- 'मानस पुन्य होहिं नहिं पापा'		(श्रीराजीवकुमारजी वैद)	३२
(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	१०	१९- कहो मारुति! गिद्धराज कैसे हैं ?	
७- सच्ची तीर्थयात्रा	११	[श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग]	
८- अनन्यताकी महत्ता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय		(आचार्य श्रीरामरंगजी)	३३
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२	२०- अछूत [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
९- सनातन धर्मके अकाट्य मन्त्र-प्रयोग (ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित		[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	३४
पूर्वाम्नाय गोवर्धन-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी		२१- गोपी-प्रेम	
श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)	१४	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३६
१०- साधकोंके प्रति—		२२- साधनोपयोगी पत्र	३७
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५	२३- व्रतोत्सव-पर्व [माघमासके व्रत-पर्व]	३९
११- भगवत्कथासे प्रेतोद्धार (श्रीरामकेदारजी शर्मा)	१९	२४- व्रतोत्सव-पर्व [फाल्गुनमासके व्रत-पर्व]	४०
१२- आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे		२५- कृपानुभूति	४१
(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	२३	२६- पढ़ो, समझो और करो	४३
१३- 'बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा'		२७- मनन करने योग्य	४६
(श्रीअमृतलालजी गुप्ता)	२५	२८- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक	
१४- कैसे लायें जीवनमें खुशियाँ? (डॉ० श्रीशैलजाजी आहूजा) ..	२७	विषय-सूची	४७

चित्र-सूची

१- राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या	(रंगीन) आवरण-पृष्ठ	४- तुलसी-पूजन	(इकरंग)	३२
२- सबमें भगवद्-दृष्टि	(") मुख-पृष्ठ	५- जटायु-रावण-युद्ध	(")	३३
३- पृथ्वीका फटना और अपराधियोंका		६- गरीबोंकी सेवा करते सुमन और गोपाल . (")		३४
उसमें समा जाना	(इकरंग)	७- पन्ना धायका त्याग	(")	४६

एकवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ २००

सजिल्द ₹ २२०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
सजिल्द शुल्क }

वार्षिक US\$ 45 (₹ 2700)

पंचवर्षीय US\$ 225 (₹ 13500)

{ Us Cheque Collection
Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

अजिल्द ₹ १०००

सजिल्द ₹ ११००

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : www.gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ (0551) 2334721

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-www.gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या

लौहित्यनिर्जितजपाकुसुमानुरागां

पाशाङ्कुशे धनुरिषूनपि धारयन्तीम् ।

ताम्रायतामरुणमाल्यविशेषशोभां

ताम्बूलपूरितमुखीं त्रिपुरां नमामि॥

अर्थात् अपनी अरुणाभ (रक्तिम) आभासे जो जपा कुसुमके लौहित्य (रक्त) वर्णको भी तिरस्कृत करनेवाली हैं, जो अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली, ताम्रवर्णसदृश सुन्दर मालाके कारण विशेष सुन्दरतासे युक्त हैं, जिनका मुख ताम्बूलसे पूरित है, ऐसी देवी त्रिपुराको मैं प्रणाम करता हूँ।

राजराजेश्वरी भगवती श्रीविद्या दशमहाविद्याओंमें षोडशी नामसे जानी जाती हैं। ये माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध देवी हैं। महाविद्याओंमें इनका चौथा स्थान है। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली इन देवीकी अंगकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। इनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। ये शान्तमुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर आसीन हैं। इनके चारों हाथोंमें क्रमशः पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा तत्पर भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो इनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता है। वस्तुतः इनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र इनकी आराधना करते हैं। वेद भी इनका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। भक्तोंको ये प्रसन्न होकर सब कुछ दे देती हैं, अभीष्ट तो सीमित अर्थवाच्य है।

प्रशान्त हिरण्यगर्भ ही शिव हैं और उन्हींकी शक्ति षोडशी हैं। तन्त्रशास्त्रोंमें षोडशी देवीको पंचवक्त्र अर्थात् पाँच मुखोंवाली बताया गया है। चारों दिशाओंमें चार और एक ऊपरकी ओर मुख होनेसे इन्हें पंचवक्त्रा कहा जाता है। देवीके पाँचों मुख तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव अघोर और प्रशान्त शिवके पाँचों रूपोंके प्रतीक हैं। पाँचों दिशाओंके

रंग क्रमशः हरित, रक्त, धूम्र, नील और पीत होनेसे ये मुख भी उन्हीं रंगोंके हैं। देवीके दस हाथोंमें क्रमशः अभय, टंक, शूल, वज्र, पाश, खड्ग, अंकुश, घण्टा, नाग और अग्नि हैं। इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपसे विकसित हैं, अतएव ये षोडशी कहलाती हैं।

षोडशीको श्रीविद्या भी माना जाता है। इनके ललितता, राजराजेश्वरी, महात्रिपुरसुन्दरी, बालापंचदशी आदि अनेक नाम हैं। इन्हें आद्याशक्ति माना जाता है। अन्य विद्याएँ भोग या मोक्षमेंसे एक ही देती हैं। ये अपने उपासकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती हैं। इनके स्थूल, सूक्ष्म, पर तथा तुरीय चार रूप हैं।

एक बार पराम्बा पार्वतीजीने भगवान् शिवसे पूछा— ‘भगवन्! आपके द्वारा प्रकाशित तन्त्रशास्त्रकी साधनासे जीवके आधि-व्याधि, शोक-संताप, दीनता-हीनता तो दूर हो जायँगे, किंतु गर्भवास और मरणके असह्य दुःखकी निवृत्ति तो इससे नहीं होगी। कृपा करके इस दुःखसे निवृत्ति और मोक्षपदकी प्राप्ति का कोई उपाय बताइये।’ परम कल्याणमयी पराम्बाके अनुरोधपर भगवान् शंकरने षोडशी श्रीविद्या-साधना-प्रणालीको प्रकट किया। भगवान् शंकराचार्यने भी श्रीविद्याके रूपमें इन्हीं षोडशी श्रीविद्याकी स्तुति करते हुए कहा है कि ‘अमृतके समुद्रमें एक मणिका द्वीप है, जिसमें कल्पवृक्षोंकी बारी है, नवरत्नोंके नौ परकोटे हैं; उस वनमें चिन्तामणिसे निर्मित महलमें ब्रह्ममय सिंहासन है, जिसमें पंचकृत्यके देवता ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर आसनके पाये हैं और सदाशिव फलक हैं। सदाशिवके नाभिसे निर्गत कमलपर विराजमान भगवती षोडशी त्रिपुरसुन्दरीका जो ध्यान करते हैं, वे धन्य हैं। भगवतीके प्रभावसे उन्हें भोग और मोक्ष दोनों सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं।’ भैरवयामल तथा शक्ति लहरीमें इनकी उपासनाका विस्तृत परिचय मिलता है। महर्षि दुर्वासा एवं आद्यशंकराचार्य आदि इनके समुपाराधक थे। इनकी उपासना श्रीचक्रमें होती है।

प्रेमकी विलक्षण एकता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६५-६६)

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा कहे हुए इन श्लोकोंमें कितना ऊँचा भाव भरा है। भगवान् कहते हैं कि मेरेमें अचल मनवाला हो, मेरा भजन कर, मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर। दृढ़ विश्वास कर, ऐसा करनेसे तू मुझे ही प्राप्त होगा। सब धर्मोंका आश्रय छोड़कर मेरी शरण आ जा, मैं तुझे सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा। शोक मत कर।

क्या इससे भी बढ़कर कोई बात हो सकती है। शास्त्र तो अनन्त हैं। अर्जुन ही सर्वश्रेष्ठ भक्त नहीं थे, उनसे बढ़कर बहुत भक्त हुए हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् स्वयं कहते हैं—‘ता मन्मनस्का मत्प्राणाः’ (१०।४६।४)। गोपियाँ जिस प्रकार तत्त्वको जानती हैं, वैसा कोई भी नहीं जानता। भगवान्ने अर्जुनसे कहा—‘मन्मना भव।’ पर गोपियाँ तो ऐसी थीं ही।

नित्य सूर्योदयसे पूर्व उठनेवालेको कोई कहे कि ‘तुम सूर्योदयसे पूर्व उठा करो’ तो वह हँसेगा कि यह जानता नहीं। अतः भगवान् गोपियोंको ऐसा उपदेश नहीं कर सकते। गोपियाँ अर्जुनसे बहुत ऊँचे दर्जेकी थीं। जो बहुत श्रद्धालु होता है, उसके सामने ऐसा नहीं कहा जा सकता कि ‘मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।’

अर्जुनसे भगवान्ने कहा—‘मा शुचः’ शोक मत कर। [यदि वह भगवान्के स्वभावको जानता तो शोक हो ही कैसे सकता था।] सभी पापोंसे छुड़ा दूँगा। जो उच्च श्रेणीके भक्त होते हैं, वे पापोंसे माफी नहीं चाहते। वे यह भी नहीं कहते कि ‘आप बड़े क्षमावान् हैं, दयालु हैं’, दासोंके दोषोंको भी नहीं देखते, वे तो भोगकर ही संतोष करते हैं। अर्जुनने तो छूट स्वीकार की।

गीतामें हमलोगोंके लिये बड़ा ऊँचा उपदेश है। हम अर्जुन-जैसे भी नहीं हैं। हम मोक्ष भी चाहते हैं और ‘चिन्ता न हो’ यह भी चाहते हैं। पर जो उच्च श्रेणीके भक्त होते हैं, वे ‘क्षमावान् एवं दयालु’ ऐसा नहीं कहते। उन्हें दीनबन्धु भी क्यों कहे? कहेँ वे जिन्हें आपसे कुछ चाह हो। जो खुशामदी होते हैं, वे उन्हें दयालु कहते हैं। हम नहीं कहते, हम दया भी नहीं चाहते। आप आर्त, अनाथ और दीनोंके नाथ हैं, उनपर आप दया करें। कोई लखपति आये और उसे दो रुपया भेंटमें दें तो वह कहेगा कि यह दीनोंको दे दो। जहाँ उच्च श्रेणीका प्रेम होता है, जहाँ सारे भाव समाप्त हो जाते हैं, वहाँ न छोटे-बड़ेका भाव है, न दास्यभाव है, न वात्सल्यभाव है, न माधुर्यभाव है। वहाँ स्वकीय-परकीय-सम्बन्ध ही नहीं है, तब माधुर्यभाव कैसे हो। ‘भगवान् पति हैं, मैं उनकी पत्नी हूँ।’—यह भाव भी वहाँ नहीं, सख्य-भाव भी नहीं है। यह बात अनिर्वचनीय है। वहाँ दो बात रहती ही नहीं। दीखनेमात्रके ही दो हैं, पर दो हैं नहीं, एक ही हैं। जैसे दो हाथ हैं, इन्हें मिला लिये तो एक हो गये। इनमें बड़ा-छोटा कौन? सोचना चाहिये—ये दो हैं या एक। देखनेमें दो होते हुए भी एक हैं, एक दीखते हुए भी दो हैं। वेदान्तके सिद्धान्तमें तो वस्तुसे एक ही हैं। पर यहाँ एक होते हुए भी दो हैं। दो होते हुए भी एक हैं।

ऐसे उच्च श्रेणीके प्रेममें वेदान्तसे भी विलक्षण एकता है, एक-सा अलौकिक प्रेम है—

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।

सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

(गीता ६।३१)

भगवान्में ही बरतना भिन्नता है और एकत्वमें स्थित होना एकता। इसलिये दोनों बातें आयीं। एकतामें स्थित होकर भजन करना एक बहुत विलक्षण उपासना है। वहाँ प्रभु नहीं कहा जाता, वहाँ तो एकता है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पद तीनों एक हैं। वहाँ दोनों प्रेमी और

भगवान्की चेष्टा भक्तके आह्लादके लिये और भक्तकी भगवान्के आह्लादके लिये और प्रेमके लिये होती है, परंतु वहाँ भी आगे जाकर आह्लाद और प्रेमकी अलग व्याख्या समाप्त हो जाती है और भगवान् तथा भक्तकी भी अलग व्याख्या नहीं रहती, सब एक ही हो जाते हैं।

यह एकताकी स्थिति सबसे ऊँची है। ऐसी स्थिति जिसकी हो गयी, उसे कुछ भी करना-कराना नहीं रहता। उसके शरीरकी क्या अवस्था हो जाती है, बतलायी नहीं जा सकती। दर्पणमें सूर्य नहीं आता, बिम्ब आता है। हमलोगोंकी दृष्टिमें उसका शरीर प्रेममय हो जाता है। जैसे सूर्यके प्रकाशसे दर्पण चमचमाने लगता है, इसी प्रकार वह साक्षात् प्रेमकी मूर्ति हो जाता है। जैसे कोई कस्तूरी लेकर चले, तो उसकी सुगन्धके परमाणु फैल जाते हैं, चाहे किसीकी नासिका खराब हो तो भले ही उसे गन्ध न आये। इसी प्रकार वह चलता है तो प्रेमका वितरण करता हुआ चलता है। कहते हैं—गौरांग महाप्रभु चलते थे तो सब मार्ग प्रेममय हो जाते थे। उनके शरीरकी दशा बेदशा हो जाती थी, जिसे देखकर लोग प्रेमी हो जाते थे। ऐसा प्रेमी तो प्रेमका समूह होता है। उसे देखकर, स्पर्शकर ही लोग प्रेममय हो जाते हैं, उनकी ऐसी अलौकिक बात है।

यह बात बताते हुए रति भाईने कहा, 'जिस समय हमने सुना, हम जीवित कैसे रह गये, आपसे कह नहीं सकते। बस, हमारा हार्ट फेल नहीं हुआ। जिन महाराजश्रीके इशारेपर लोग कुछ भी करनेको तैयार रहते थे, वह महापुरुष कह रहा है कि स्त्रीकी अस्थियोंके विसर्जनके लिये पैसा नहीं है और हम सामने खड़े सुन रहे हैं? हम फूट-फूटकर रो पड़े। धिक्कार है हमें और धन्य है भारतवर्ष, जहाँ ऐसे वैराग्यवान् महापुरुष जन्म लेते हैं।'

‘मानस पुन्य होहिं नहिं पापा’

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

कलियुगका यह पुनीत प्रताप है कि इसमें मानस पुण्यकर्मोंका फल होता है, पापकर्मोंका नहीं, परंतु इन वचनोंका आशय और है। यदि मनसे होते रहेंगे, अर्थात् मानस कर्मका अभ्यास हो जायगा, तब देहेन्द्रियादिसे भी पापकर्म अवश्य ही हो जायँगे। अतः मनसे सर्वदा पापकर्मोंका परित्याग और अच्छे कर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये, इससे बुरे कर्म होनेका अवकाश न रहेगा, शुद्ध कर्म ही शरीरसे भी होने लगेगा। 'मानस पुण्य होता है'—यह कहनेका प्रयोजन यही है कि प्राणीके मनसे पुण्यकर्म किया जाय, जिससे देहेन्द्रियादिसे भी पुण्यकर्म होने लग जायँ और 'मानस पाप नहीं होता'—यह कहनेका भी प्रयोजन यह है कि यदि असावधानीसे कुछ मानस पाप हो जाय तो भी देहेन्द्रियादिसे उन कर्मोंको न होने दे। ऐसा न समझ ले कि मनसे कर्म होनेपर पाप हो ही गया, फिर अब शरीरसे भी क्यों न कर लिया जाय; किंतु यह समझना उचित है कि पुण्य मानस भी होता है, अतः उसका संकल्प चलाये और पाप मानस नहीं होता, अतः यदि कथंचित् असावधानीसे मनद्वारा बुरा कर्म हो गया, तो भी देहादिसे बुरे कर्म न होने देकर बड़ी सावधानीसे मनद्वारा भी बुरे कर्मोंको न होने दे। यदि मानस पापकर्म करता रहेगा, तो अभ्यास बढ़ जानेपर न चाहते हुए भी बुरे कर्मोंको भी करना ही पड़ेगा। जैसे गमनजन्य वेगके बढ़ जानेपर गमनक्रियामें स्वतन्त्र गन्ताकी भी स्वतन्त्रता तिरोहित हो जाती है, वैसे ही मननजन्य वेगके बढ़ जानेपर मननक्रियामें स्वतन्त्र मन्ताकी भी मननमें स्वाधीनता छिप जाती है। इतना ही नहीं; किंतु पराधीनताका भी स्पष्ट अनुभव होने लगता है। इसी तरह बुरे कर्मोंके संकल्पोंके धाराबद्ध हो जानेपर उनका रोकना अपने वशमें नहीं रहता। इसलिये अच्छे कर्मोंके संकल्पको चलाना और बुरे कर्मोंके संकल्पोंको रोकना परमावश्यक है। संकल्प ही विश्वका मूल है, उसीपर उन्नति, अवनति—दोनों निर्भर है। इसीलिये शास्त्रोंने बार-बार उत्तम विचार और दृढ़ संकल्पकी महत्ता गायी है। बन्ध-मोक्षमें भी भावनाको ही प्रधानता दी गयी है। अपनेको कर्ता, भोक्ता, सुखी-दुखी, बद्ध माननेवाला प्राणी बद्ध रहता है और अपनेको नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त माननेवाला प्राणी मुक्त हो जाता है। मैं कुछ भी नहीं कर सकता, अतः मैंने हीन, नीच, मापी सर्वदा परमाधीन

लाभ नहीं कर सकता, भगवदाश्रित होकर भगवद्वत्त साधनोंका आलम्बन करके सब कुछ कर सकता हूँ, ऐसा निश्चयवान् प्राणी पुरुषार्थलाभ कर सकता है। इसलिये श्रुति प्रोत्साहन देती है—‘उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु। भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः ॥’ यदि अनुष्ठान न भी हो सके तो भी सत्संकल्प परम लाभदायक होते हैं।

ईश्वर और योगीका संकल्प विचित्र सामर्थ्यसम्पन्न होता है। विभिन्न योगियोंने अपने संकल्पसे विश्वका निर्माण कर लिया है। परमेश्वरका ज्ञान या संकल्प ही उनका तप समझा जाता है। उनके ज्ञानरूप तपसे ही विश्व बन जाता है। उसी तरह वसिष्ठ आदि महर्षियोंने भी संकल्परूप तपस्यासे विश्वनिर्माणका अनुभव किया था। संकल्पकी विचित्रतासे ही जगत्की विचित्रता होती है। संकल्प ही बाह्य प्रपंचके रूपमें प्रकट होता है। जैसे काष्ठके भीतर विविध पुत्रिका विद्यमान रहती है, वही कारक-व्यापारसे प्रकट होती है, वैसे ही मनके संकल्पमें ही लीन सम्पूर्ण विश्व उचित कारण-कलापोंसे प्रकट हो जाता है। जैसे मिट्टी या सुवर्णके होनेपर ही घट, शरावादि और कटक, मुकुट, कुण्डलादि हो सकते हैं, अन्यथा नहीं, वैसे ही संकल्पके रहनेपर ही विश्वकी उपलब्धि होती है। जब मनकी हलचल है, तभी द्वैत है। मनकी हलचल न होनेपर विश्वका पता नहीं लगता। संकल्पकी अनेकरसतासे ही विश्वकी अनेकरसता भी अनुभूत होती है। इसलिये यद्यपि कहीं विश्वको अव्यय और सनातन कहा गया है—‘एषोऽश्वत्थः सनातनः’ ‘अश्वत्थं प्राहुर्व्ययम्।’ तथापि विश्वकी क्षणभंगुरता अबाधित ही रहती है। कूटस्थ, नित्य, केवल एक आत्मा ही है। परिणामी पदार्थ प्रवाहरूपसे ही नित्य है। पूर्वरूप—परित्यागपूर्वक रूपान्तरापत्ति ही परिणाम है। अतः परिणामी पदार्थ कूटस्थरूपसे नित्य कदापि नहीं हो सकते, स्थूल जगत्में कभी-कभी हिमालयके स्थानमें समुद्र, समुद्रके स्थानमें हिमालय हो जाता है। मरुस्थानमें गंगा और गंगाके स्थानमें मारवाड़ दिखने लगता है। संकल्प या भावनाकी शुद्धतासे ही प्राणियोंकी शुद्धि और भावनाकी ही अपवित्रतासे अपवित्रता होती है। अतः हमें आज सबसे

सच्ची तीर्थयात्रा

एक संत किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थानपर गये थे। वहाँ एक दिन वे तीर्थस्नान करके रातको मन्दिरके पास सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा—दो तीर्थदेवता आपसमें बातें कर रहे हैं। एकने पूछा—

‘इस वर्ष कितने नर-नारी तीर्थमें आये?’

‘लगभग छः लाख आये होंगे।’ दूसरेने उत्तर दिया।

‘क्या भगवान् ने सबकी सेवा स्वीकार कर ली?’

‘तीर्थके माहात्म्यकी बात तो जुदा है; नहीं तो उनमें बहुत ही कम ऐसे होंगे, जिनकी सेवा स्वीकृत हुई हो।’

‘ऐसा क्यों?’

‘इसीलिये कि भगवान् में श्रद्धा रखकर पवित्र भावसे तीर्थ करने बहुत थोड़े लोग आये। जो आये, उन्होंने भी तीर्थोंमें नाना प्रकारके पाप किये।’

‘कोई ऐसा भी मनुष्य है जो कभी तीर्थ नहीं गया, परंतु जिसको तीर्थोंका फल प्राप्त हो गया और जिसपर प्रभुकी प्रसन्नता बरस रही हो?’

कई होंगे, एकका नाम बताता हूँ, वह है रामू। यहाँसे बहुत दूर केरल देशमें रहता है।

इतनेमें संतकी नींद टूट गयी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और इच्छा हुई केरल देशमें जाकर भाग्यवान् रामूका दर्शन करनेकी। संत उत्साही और दृढ़निश्चयी तो होते ही हैं, चल दिये और बड़ी कठिनातासे केरल पहुँचे। पता लगाते-लगाते एक गाँवमें रामूका घर मिल गया। संतको आया देख वह बाहर आया। संतने पूछा—‘क्या करते हो भैया?’

‘जूते बनाकर बेचता हूँ, महाराज!’ रामूने उत्तर दिया।

‘तुमने कभी तीर्थयात्रा भी की है?’

‘नहीं महाराज! मैं गरीब आदमी तीर्थयात्राके लिये पैसा कहाँसे लाता? तीर्थका मन तो था परंतु जा नहीं सका।’

‘तुमने और कोई बड़ा पुण्य किया है?’

‘ना महाराज! मैं गरीब पुण्य कहाँसे करता?’

तब संतने अपना स्वप्न सुनाकर उससे पूछा—‘फिर भगवान् की इतनी कृपा तुमपर कैसे हुई?’

‘भगवान् तो दयालु होते ही हैं, उनकी कृपा दीनोंपर विशेष होती है।’ (इतना कहते-कहते वह गद्गद हो गया), फिर बोला—‘महाराज! मेरे मनमें वर्षोंसे तीर्थयात्राकी चाह थी। बहुत मुश्किलसे पेटको खाली रख-रखकर मैंने कुछ पैसे बचाये थे, मैं तीर्थयात्राके लिये जानेवाला ही था कि मेरी स्त्री गर्भवती हो गयी। एक दिन पड़ोसीके घरसे मेथीकी सुगन्ध आयी, मेरी स्त्रीने कहा—‘मेरी इच्छा है मेथीका साग खाऊँ, पड़ोसीके यहाँ बन रहा है, जरा माँग लाओ।’ मैंने जाकर साग माँगा। पड़ोसिन बोली—‘ले जाइये, परंतु है यह बहुत अपवित्र। हमलोग सात दिनोंसे सब-के-सब भूखे थे, प्राण जा रहे थे। एक जगह एक मुर्देपर चढ़ाकर साग फेंका गया था, वही मेरे पति बीन लाये। उसीको मैं पका रही हूँ।’ (रामू फिर गद्गद होकर कहने लगा) ‘मैं उसकी बात सुनकर काँप गया। मेरे मनमें आया, पड़ोसी सात-सात दिनोंतक भूखे रहें और हम पैसे बटोरकर तीर्थयात्रा करने जायँ। यह तो ठीक नहीं है। मैंने बटोरे हुए सब पैसे आदरके साथ उनको दे दिये। वह परिवार अन्न-वस्त्रसे सुखी हो गया। रातको भगवान् ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—‘बेटा! तुझे सब तीर्थोंका फल मिल गया, तुझपर मेरी कृपा बरसेगी।’ ‘महाराज! तबसे मैं सचमुच सुखी हो गया। अब मैं तीर्थस्वरूप भगवान् को अपनी आँखोंके सामने ही निरन्तर देखा करता हूँ और बड़े आनन्दसे दिन कट रहे हैं।’

रामूकी बात सुनकर संत रो पड़े। उन्होंने कहा—‘सचमुच तीर्थयात्रा तो तैने ही की है।’

अनन्यताकी महत्ता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

प्रश्न है कि भगवत्प्रेमके पथमें अनन्यताकी कितनी महत्ता है? तो सारी अनन्यताकी ही महत्ता है, लेकिन उसमें एक बात है, जितने भी अपने इष्टके अतिरिक्त दूसरे रूप हैं और जिनको दूसरे साधक इष्ट मानते हैं, प्रेम करते हैं, उनमें न तो हीनताका भाव करे, न उनको दूसरा माने और न उनको भजे—फिर कैसे करे?

जैसे एक आदमी भगवान् रामचन्द्रका उपासक है, एक आदमी भगवान् शंकरका उपासक, एक आदमी भगवान् श्रीकृष्णका उपासक है और एक आदमी निर्गुण ब्रह्मका उपासक है। तो वह रामका उपासक क्या समझे? रामका उपासक ये भी न समझे कि ब्रह्म, शिव और कृष्ण—ये उससे अलग हैं और ये भी न समझे कि ये उससे नीचे हैं और ये भी न समझे कि अलग-अलग हैं और ये भी न समझे कि हमको इनकी उपासना करनी चाहिये—तो क्या समझे? वह यह समझे कि हमारे ही राम, हमारे ही राघवेन्द्र वहाँपर श्रीकृष्ण बने हुए हैं और श्रीकृष्णके नामसे पूजनेवाले हमारे रामको ही पूजते हैं, वहाँ हमारे राम शिव बने हुए हैं और शिवके उपासक शिवरूपसे हमारे ही रामको पूजते हैं, वहाँ हमारे राम निर्गुण ब्रह्म बने हुए हैं और निर्गुण ब्रह्मके उपासक हमारे ही रामकी उपासना कर रहे हैं। इसलिये न तो वे अलग हैं, न वे छोटे हैं और जो हमारे ही राम हैं, हमें जो रूप प्यारा, जिसकी हम उपासना करते हैं—उसकी हम क्यों न करें? जरा सोचिये, क्या वे अलग-अलग हैं? जरा सोचिये, भगवान् सौ-पचास नहीं होते, सत्य एक है, भगवान् एक है, परंतु यदि हम अपने भगवान्के सिवाय दूसरे सबके उपास्य भगवान्को भगवान् नहीं मानते तो हमारे भगवान् हमारी छोटी-सी सीमाके अन्दर बद्धमूल होकर अल्प बन जाते हैं और जो

अल्प है, वह भगवान् नहीं, ब्रह्म नहीं और यदि हम उन सबको अलग-अलग भगवान् मानते हैं, तो इतने भगवान् हो जाते हैं कि सभी छोटे हो गये। तब वे भी भगवान् नहीं रहे और अगर हम उपासनाको बदलते हैं तो हम कहींपर जाकर टिकते नहीं, तो भी हमारे लिये अनन्यता नहीं रही और पागलपन हो गया और यदि हम उन्हें छोटा-बड़ा मानते हैं, तो वे हमारेवालेको छोटा मानेंगे और हम उनकेवालेको छोटा मानेंगे—तो हमने भगवान्को छोटा कर दिया।

इसलिये अनन्यताका अर्थ ये है कि दूसरेके भगवान् हमारे भगवान्से अलग नहीं, दूसरेके भगवान् हमारे भगवान्से छोटे नहीं, दूसरेके भगवान् हमारे ही भगवान् हैं और दूसरेके भगवान् उस रूपमें हमारे उपास्य नहीं; इस प्रकारसे अन्य इष्टोंके प्रति भाव करे और एक बात इसमें और है कि सन्तोंमें क्या भाव करे?

ऐसी बात है कि सन्त सभी भगवद्रूप हैं, अगर सन्त हैं। यों तो सन्तकी बात क्या, नरकका कीड़ा भी भगवद्रूप है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि नरकके कीड़ेसे भी घृणा न करे, नरकका कीट भी हमारे लिये पूज्य है। भगवान्के नाते **‘बंदइ सभी भगवान्के नाते’** जितने भी जगत्में चराचर भूत प्राणी हैं, वे सबके सब भगवद्रूप **‘यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः’** सबको अनन्य भावसे प्रणाम करें।

अब रही सन्तकी बात, तो सन्तमें जिस सन्तका जो अनुगत हो, सन्तमें भगवद्बुद्धि करना, गुरुमें भगवद्बुद्धि करना पाप नहीं, पर गुरु कहीं अपनेको भगवान् बताकर बोले कि भगवान्को तो हटा दो और हमको बैठा लो यहाँपर, तो ये जरा सावधानीकी चीज है। यहाँपर तो सावधान होना चाहिये, ऐसी बात ये कह क्यों रहा है? सन्तके अनुगत हो, अपने सन्तके अनुगत हो, उसका कहा मानो, उस गुरुके मनके

सनातन धर्मके अकाट्य मन्त्र-प्रयोग

(ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित पूर्वाम्नाय गोवर्धन-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)

‘अच्युताय नमः, अनन्ताय नमः, गोविन्दाय नमः’—

आदिचौरकफल्लस्य ब्रह्मदत्तवरस्य च।

तस्य स्मरणमात्रेण चौरौ विशति न गृहे॥

सोते समय घरके ताले लगाते हुए इस मन्त्रके

स्मरणमात्रसे चोर घरमें आयेगा ही नहीं।

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः।

कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥

यदि किसीको नींद न आती हो तो हाथ-पैर

धोकर सोते समय इस मन्त्रका उच्चारण करते रहें। दो-

तीन दिन प्रयोगके बाद ही शीघ्र सुखद निद्रा आने

लगेगी।

गच्छ गौतम शीघ्रं त्वं ग्रामेषु नगरेषु च।

आसनं भोजनं यानं सर्वं मे परिकल्पय॥

—इस मन्त्रका जप करनेसे सभी तरहसे साधन

सुलभ होकर यात्रा सुखद होती है।

सर्पापसर्प भद्रं ते गच्छ सर्प महाविष।

जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर॥

आस्तीकवचनं स्मृत्वा यः सर्पो न निवर्तते।

शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशपावृक्षको यथा॥

जब कभी सर्प दिखलायी दे, उसी समय इस

मन्त्रको जोरसे सर्पके सामने कहना चाहिये। इसे सुनते

ही सर्प तत्क्षण लौट जायगा तथा किसीको नहीं

काटेगा। रात्रिमें सोते समय भी इस मन्त्रको कहा जाता

है। इसे कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

तिस्त्रो भार्याः कफल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती।

तासां स्मरणमात्रेण चौरौ गच्छति निष्फलः॥

कफल्ल कफल्ल कफल्ल।

रात्रिमें सोते समय इस मन्त्रको कहकर और तीन

बार ताली बजाकर सोये। इससे चोरी नहीं होगी। सोनेसे

पूर्व द्वारकी साँकल बन्द करते समय भी यथाशक्ति

इसका जप करनेसे चोर आदि रात्रिमें आयेगा भी तो

उसे खाली हाथ लौटना पड़ेगा।

वाराणस्यां दक्षिणे तु कुक्कुटो नाम वै द्विजः।

तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत्॥

यदि किसीको बुरे स्वप्न आते हों तो रात्रिमें हाथ-

पैर धोकर शान्त-चित्तसे पूर्वमुख आसनपर बैठकर

प्रतिदिन इस मन्त्रका १०८ बार जप करे, दुःस्वप्न बन्द

हो जायँगे तथा उनके फल भी अच्छे होंगे।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

सभी प्रकारके रोगकी निवृत्तिके लिये उपर्युक्त

श्लोकका अधिकाधिक जप करे। जो लोग श्लोकका

पाठ करनेमें असमर्थ हों, वे ‘अच्युताय नमः, अनन्ताय

नमः, गोविन्दाय नमः।’—इन तीन मन्त्रोंका ही जप

करें।

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।

नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

—इस मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जप करनेसे

परिवारिक कलहकी निवृत्ति होगी।

साधकोंके प्रति—

[धर्मका सार]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्॥

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(पद्मपुराण, सृष्टि० १९।३५५-३५६)

धर्मसर्वस्व अर्थात् पूरा-का-पूरा धर्म थोड़ेमें कह दिया जाय तो वह इतना ही है कि जो बात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरोंके प्रति मत करो। इसमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार आ जाता है। जैसे, आपका यह भाव रहता है कि प्रत्येक आदमी मेरी सहायता करे, मेरी रक्षा करे, मुझपर विश्वास करे, मेरे अनुकूल बने और दूसरा कोई भी मेरे प्रतिकूल न रहे, मुझे कोई ठगे नहीं, मेरी कोई हानि न करे, मेरा कोई निरादर न करे, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं दूसरेकी सहायता करूँ, दूसरेकी रक्षा करूँ, दूसरेपर विश्वास करूँ, दूसरेके अनुकूल बनूँ और किसीके भी प्रतिकूल न रहूँ, किसीको ठगूँ नहीं, किसीको कोई हानि न करूँ, किसीका निरादर न करूँ, आदि-आदि। इस प्रकार आप स्वयं अनुभवका आदर करें तो आप पूरे धर्मात्मा बन जायेंगे।

मेरी कोई हानि न करे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीकी हानि न करूँ—यह अपने हाथकी बात है। सब-के-सब मेरी सहायता करें—यह मेरे हाथकी बात नहीं है, पर इस बातसे यह सिद्ध होता है कि मैं सबकी सहायता करूँ। मेरे साथ जिन-जिनका काम पड़े, उनकी सहायता करनेवाला मैं बन जाऊँ। मुझे कोई बुरा न समझे—इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि मैं किसीको बुरा न समझूँ। यह अनुभवसिद्ध बात है। कोई भी मुझे बुरा न समझे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीको बुरा न समझूँ—यह अपने हाथकी बात है। जो अपने हाथकी बात है, उसे करना ही धर्मका अनुष्ठान है। ऐसा करनेवाला पूरा धर्मात्मा बन जाता है। जो धर्मात्मा होता है, उसे सब चाहते हैं,

उसकी सबको आवश्यकता रहती है। आदमी किसे नहीं चाहता? जो स्वार्थी होता है, मतलबी होता है, दूसरोंकी हानि करता है, उसे कोई नहीं चाहता; परंतु जो तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे दूसरोंका भला करता है, जिसके हृदयमें सबकी सहायता करनेका, सबको सुख पहुँचानेका भाव है, उसे सब लोग चाहने लगते हैं। जिसे सब लोग चाहते हैं, वह अधिक सुखी रहता है। कारण कि अभी अपने सुखके लिये अकेले हमीं उद्योग कर रहे हैं तो उसमें सुख थोड़ा होगा, पर दूसरे सब-के-सब हमारे सुखके लिये उद्योग करेंगे तो हम सुखी भी अधिक होंगे और लाभ भी अधिक होगा।

सब-के-सब हमारे अनुकूल कैसे बनें? कि हम किसीके भी प्रतिकूल न बनें, किसीके भी विरुद्ध काम न करें। अपने स्वार्थके लिये अथवा अभिमानमें आकर हम दूसरेका निरादर कर दें, तिरस्कार कर दें, अपमान कर दें और दूसरेको बुरा समझें तो फिर दूसरा हमारा आदर-सम्मान करे, हमें अच्छा समझे—इसके योग्य हम नहीं हैं। जबतक हम किसीको बुरा आदमी समझते हैं; तबतक हमें कोई बुरा आदमी न समझे—इस बातके हम हकदार नहीं होते। इसके हकदार हम तभी होते हैं, जब हम किसीको बुरा न समझें। अब कहते हैं कि बुरा कैसे न समझें? उसने हमारा बुरा किया है, हमारे धनकी हानि की है, हमारा अपमान किया है, हमारी निन्दा की है! तो इसपर आप थोड़ी गम्भीरतासे विचार करें। उसने हमारी जो हानि की है, वह होनेवाली थी। हमारी हानि न होनेवाली हो और दूसरा हमारी हानि कर दे—यह तो हो ही नहीं सकता। परमात्माके राज्यमें हमारी जो हानि होनेवाली नहीं थी, उस परमात्माके रहते हुए दूसरा हमारी वह हानि कैसे कर देगा? हमारी तो वही हानि

एक दिनकी बात है, जिन्होंने जयदेवके हाथ काटे थे, वे चारों डाकू साधुके वेशमें कहीं जा रहे थे। उन्हें राजाने भी देखा और जयदेवने भी। जयदेवने उन्हें पहचान लिया कि ये वे ही डाकू हैं। उन्होंने राजासे कहा कि 'देखो, राजन्! तुम धन लेनेके लिये बहुत आग्रह किया करते हो। यदि धन देना हो तो वे जो चारों आदमी जा रहे हैं, वे मेरे मित्र हैं, उन्हें धन दे दो। मुझे धन दो या मेरे मित्रोंको दो, एक ही बात है।' राजाको आश्चर्य हुआ कि पण्डितजीने कभी आयु-भरमें किसीके प्रति 'आप दे दो' ऐसा नहीं कहा, पर आज इन्होंने कह दिया है! राजाने उन चारों व्यक्तियोंको बुलवाया। वे आये और उन्होंने देखा कि हाथ कटे हुए पण्डितजी वहाँ बैठे हैं तो उनके प्राण सूखने लगे कि अब कोई 'विपत्ति' आयेगी! अब ये हमें मरवा देंगे! राजाने उनके साथ बड़े आदरका बरताव किया और उन्हें खजानेमें ले गया। उन्हें सोना, चाँदी, मुहरें आदि खूब दिये। लेनेमें तो उन्होंने खूब धन ले लिया, पर पासमें बोल अधिक हो गया। अब क्या करें? कैसे ले जायँ? तब राजाने अपने आदमियोंसे कहा कि इन्हें पहुँचा दो। धनको सवारीमें रखवाया और सिपाहियोंको साथमें भेज दिया। वे जा रहे थे। रास्तेमें उन सिपाहियोंमें जो बड़ा

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—‘महाराज! आप अपनेको अपराधी मानते हैं कि चार आदमी मेरे कारण मर गये, तो फिर आपके हाथ कैसे आ गये?’ वे बोले कि ‘भगवान् अपने जनके अपराधोंको, पापोंको, अवगुणोंको देखते ही नहीं! उन्होंने कृपा की तो हाथ आ गये।’ राजाने कहा—‘महाराज! उन्होंने आपको इतना दुःख दिया तो आपने उन्हें धन क्यों दिलवाया?’ वे बोले—‘देखो राजन्! उन्हें धनका लोभ था और लोभ होनेसे वे और किसीके हाथ काटेंगे; अतः विचार किया

कि आप धन देना ही चाहते हैं तो उन्हें इतना धन दे दिया जाय कि जिससे बेचारोंको कभी किसी निर्दोषकी हत्या न करनी पड़े। मैं तो सदोष था, इसलिये मुझे दुःख दे दिया; परंतु वे किसी निर्दोषको दुःख न दे दें, इसलिये मैंने उन्हें भरपेट धन दिलवा दिया।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ! उसने कहा कि 'आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?' वे बोले कि 'महाराज! यदि पहले बताता तो आप उन्हें दण्ड देते। मैं उन्हें दण्ड नहीं दिलाना चाहता था। मैं तो उनकी सहायता करना चाहता था; क्योंकि उन्होंने मेरे पापोंका नाश किया, मुझे क्रियात्मक उपदेश दिया। मैंने तो अपने पापोंका फल भोगा, इसलिये मेरे हाथ कट गये। नहीं तो भगवान्‌के दरबारमें, भगवान्‌के रहते हुए कोई किसीको अनुचित दण्ड दे सकता है? कोई नहीं दे सकता। यह तो उनका उपकार है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मुझे शुद्ध कर दिया।'

इस कथासे सिद्ध होता है कि सुख या दुःखको देनेवाला कोई दूसरा नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है—‘सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।’ (अध्यात्मरामायण २।६।६) दुःख तो हमारे प्रारब्धसे मिलता है, पर उसमें कोई निमित्त बन जाता है तो उसपर दया करनी चाहिये कि बेचारा व्यर्थमें ही पापका भागी बन गया! रामायणमें आता है कि वनवासके लिये जाते समय रात्रिमें श्रीरामजी निषादराज गहके यहाँ ठहरे। निषादराजने कहा—

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कटिलपन् कीन्ह।

जेहिं रघनंदन जानकिहि सुख अवसर दख दीन्ह ॥

(रा०च०मा० २।९१)

तब लक्ष्मणजीने कहा—

काह न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

(रा०च०मा० २।९२।४)

है, मेरी निन्दा करता है, मुझे कष्ट पहुँचाता है, मेरी हानि करता है—ऐसा जो विचार आता है, यह कुबुद्धि है, नीची बुद्धि है। वास्तवमें दोष उसका नहीं है, दोष है हमारे पापोंका, हमारे कर्मोंका। इसलिये परमात्माके राज्यमें कोई हमें दुःख दे ही नहीं सकता। हमें जो दुःख मिलता है, वह हमारे पापोंका ही फल है। पापका फल भोगनेसे पाप कट जायगा और हम शुद्ध हो जायँगे। अतः कोई हमारी हानि करता है, अपमान करता है, निन्दा करता है, तिरस्कार करता है, वह हमारे पापोंका नाश कर रहा है—ऐसा समझकर उसका उपकार मानना चाहिये, प्रसन्न होना चाहिये।

किसीके द्वारा हमें दुःख हुआ तो वह हमारे प्रारब्धका फल है, परंतु यदि हम उस आदमीको खराब समझेंगे, अन्य समझेंगे, उसकी निन्दा करेंगे, तिरस्कार करेंगे, दुःख देंगे, दुःख देनेकी भावना करेंगे तो अपना अन्तःकरण मैला हो जायगा, हमारी हानि हो जायगी! इसलिये सन्तोंका यह स्वभाव होता है कि दूसरा उनकी बुराई करता है, तो भी वे उसकी भलाई करते हैं—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो कइ भलाई ॥

(रा०च०मा० ५।४१।७)

ऐसा सन्त-स्वभाव हमें बनाना चाहिये। अतः कोई दुःख देता है तो उसके प्रति सद्भावना रखो, उसे सुख कैसे मिले—यह भाव रखो। उसमें दुर्भावना करके मनको मैला कर लेना मनुष्यता नहीं है। इसलिये तनसे, मनसे, वचनसे सबका हित करो, किसीको दुःख न दो। जो तन-मन-वचनसे किसीको दुःख नहीं देता, वह इतना शुद्ध हो जाता है कि उसका दर्शन करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं—

तन कर मन कर वचन कर, देत न काह दुःख।

तलसी पातक हरत है, देखत उसको मुख॥

नारायण । नारायण !! नारायण !!!
MADE WITH ♡ LOVE BY:

भगवत्कथासे प्रेतोद्धार

(श्रीरामकेदारजी शर्मा)

अनेक प्रकारकी विचित्रताओंसे भरा हुआ यह विशाल विश्व उस लीलामय प्रभुका एक इन्द्रजाल ही है। दिन-रात आँखोंके सामने होनेवाली उनकी अब्दुत लीलाओंको देखते हुए भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं, उस प्रभुकी सत्ता एवं उसके सनातन विधानोंपर आस्था नहीं होती, विश्वास नहीं होता। फलतः, हम स्वेच्छाचारितावश नीतिपथसे विमुख हो अपना जीवन जन्म-जन्मान्तरके लिये घोर संकटमें डाल लेते हैं। प्रभुकी विचित्र लीलाओंका प्रत्यक्ष अनुभवकर नीचे कुछ पंक्तियाँ पाठकों, विशेषकर उन महानुभावोंको ध्यानाकर्षित करनेके लिये उपस्थित की जाती हैं, जिन्हें प्रभु अथवा उनकी लीलाओंपर कतई विश्वास नहीं होता।

घटना लगभग पचपन वर्ष पहलेकी है। मेरे परिवारका नियम था कि प्रतिदिन सन्ध्या-समय बच्चे-बूढ़े एक साथ बैठकर प्रार्थना करते थे। बादमें रामायण, भागवत आदि किसी-न-किसी ग्रन्थकी कथा भी प्रायः होती थी, जिसे मेरे पूज्य वृद्ध पिताजी तथा कुछ अन्य श्रद्धालु नर-नारी भी सुना करते थे। एक दिन प्रार्थना समाप्त होते ही मेरी ग्यारह सालकी बच्ची जोरोंसे रोने लगी। हमलोगोंके बहुत समझानेपर भी चुप नहीं होती थी। मैंने रंजमें उसे बहुत डाँटा। फिर तो वह बिलकुल चुप हो गयी और पूछनेपर कि 'क्यों रो रही थी?' उसने कहा—'कहाँ रोती थी?' फिर उसे रामायण पढ़नेका आदेश देकर (क्योंकि उसे नित्य रामायण ही पढ़ायी जाती थी) मैं कुछ स्वाध्यायमें लग गया। रामायण पढ़नेके सिलसिलेमें ही कुछ देर बाद वह आकर मेरे पूज्य पिताजीसे रोती बाहर रास्तेकी ओर इशाराकर कहने लगी—'बाबा, देखिये, वह वहाँपर खड़ी औरत मुझे पढ़नेसे मना करती है, उसे मारिये न!' मैं यह सुनकर तुरंत वहाँ गया। देखा, रास्तेपर कोई औरत कहीं न थी। आश्चर्य हुआ। फिर उसे ले जाकर कमरेमें बैठाया, जहाँ पूज्य पिताजीको श्रीरामचरितमानसकी कथा सुना रहा था। यों तो बच्चीको कथा सुननेका शौक नहीं। अगर

कभी जबरन बैठाया भी तो वह सो जाती या वहाँसे भाग जाया करती, परंतु आज ऐसी बात नहीं थी। आज वह सावधानीसे पालथी लगा कथा सुन रही थी। मैंने सशंक हो बीचमें ही बच्चीसे (क्योंकि एक बार दो-तीन मास पूर्व रात्रिमें सुप्तावस्थामें ही वह अनायास रोने-चिल्लाने लगी थी, तो घरवालोंने किसी झाड़-फूँकवालेको बुलाकर दिखाया था) पूछा—‘तुम कौन हो? कहाँ रहती हो? कहाँसे, किसलिये आयी हो?’ तो उसने उत्तर दिया—‘मैं यहीं पासमें ही रहती हूँ, बहुत दूरसे अभी आयी हूँ, एक जगह कथा सुनने गयी थी, वहाँ अच्छी कथा नहीं हो रही थी। अतः यहाँ सुनने चली आयी।’ ‘फिर कभी आयेगी?’ मेरे प्रश्न करनेपर उसने उत्तर दिया—‘एक दिन और आऊँगी।’ मैंने कहा—‘जब भागवतकी कथा होगी, तब आना।’ फिर मैं कथा कहने लगा और समाप्त होनेपर मैंने कहा—‘अब कथा समाप्त हो गयी।’ तो, ‘अब जाऊँगी’ वह बोली। मैंने कहा—‘जाओ।’ बच्ची फुर्तीसे उठकर चल पड़ी। मैंने दो लड़कोंको पीछेसे देखनेको भेजा कि ‘वह कहाँ जाती है?’ बच्ची राहपर कुछ दूर जा, फिर लौट आयी। मैंने उसके आते ही पूछा—‘बच्ची, कहाँ थी?’ ‘घरपर सोयी तो थी!’—उसने कहा! अब वह प्रकृतिस्थ थी। धीरे-धीरे ये बातें सबोंको भूल गयीं।

\times
 \times
 \times
 \times

दो महीने बाद ज्येष्ठका पुरुषोत्तममास आया। महीनेभरके लिये शामको भागवतकी कथाका आयोजन किया। दो-तीन ही दिन कथारम्भके हुए थे कि प्रार्थनाके बाद बच्चीको एकाएक मूर्च्छा आ गयी। होश आनेपर पूछनेसे पता चला कि वही 'प्रेतात्मा' वादेके मुताबिक भागवतकी कथा सुनने आयी है। महीनेभर कथा चलेगी, यह जानकर नियमितरूपसे वह बच्चीके माध्यमसे (मूर्च्छा लगाकर) आने भी लगी। दो ही दिनों बाद यह आश्चर्यजनक खबर घर-घरमें फैल गयी। प्रार्थना समाप्त हुई कि बच्ची बेहोश! फिर क्षणभरमें होश

दुरुस्त ! और बच्ची शान्त हो कथा सुननेके लिये बैठ जाती । यह तमाशा देखनेके लिये सायंकाल मेरे दरवाजेपर भीड़ लग जाती थी, जो मुझे अखरने लगी । कथा-समाप्तिके बाद दिनोंदिन कुछ समयतक मेरी उसके साथ बातें हुआ करतीं; जिसमें उसका नाम-पता, उसे किस प्रकार यह योनि मिली, रहन-सहन, उसके संगी-साथी, कथा-श्रवणकी लगन आदि बातोंकी जानकारी मिली । मैंने तो तब दाँतों अँगुली काटी, जब उसके द्वारा यह मालूम हुआ कि मेरा सद्यःप्रसूत शिशु और उसकी माँ, जो सात वर्ष पहले ही एक साथ चल बसे थे तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र जो बीस वर्षकी कच्ची उम्रमें ही अपनी नवविवाहिता पत्नीको छोड़ गत वर्ष आश्विनमें अकस्मात् सर्पदंशसे चल बसा था—सब-के-सब साथ-साथ रहते थे । धीरे-धीरे वे सब भी कथामें सम्मिलित होने लगे । विशेषता यह थी कि उन लोगोंकी सम्मतिसे ही कथाके अतिरिक्त समयमें स्मरणमात्रसे ही उनके आनेपर बच्चीके माध्यमसे घण्टों अलग-अलग सबोंसे बातें हुआ करती थीं और जीवित लोगोंकी तरह क्रमशः उनसे मेरी आत्मीयता बढ़ने लगी । लोगोंका हंगामा और बच्चीके शारीरिक कष्टको देख मैंने उन (मृतात्माओं)—से यह अभिलाषा प्रकट की कि कथा सुननेका वे कोई दूसरा उपाय सोचें, जिससे बच्चीको किसी प्रकारका कष्ट न हो और जन-साधारणकी भी भीड़ न लगे । इसपर उनके इच्छानुसार अलग एक आसनका प्रबन्ध रोज किया जाने लगा, जहाँ वे अब बच्चीको बिना मूर्च्छित किये ही आकर कथा सुनने लगीं । हाँ, बच्ची उन्हें साक्षात् देखा करती और बातें भी कर लेती थी ।

इस प्रकार लगभग डेढ़ माह तक कथा चलती रही और उन प्रेतात्माओं का नियमित रूप से कथा-श्रवण भी चलता रहा। कभी-कभी बच्ची के माध्यम से वे बहुत रोने लगतीं और प्रेतयोनि से अपने उद्धार के लिये प्रार्थना करतीं। मेरे आश्वासन देने पर चुप हो जातीं। इस प्रसंग में काशी के एक सुप्रसिद्ध महात्मा से पत्र द्वारा इनके उद्धार का उपाय पूछा तो उत्तर मिला—

देहि पिण्डं गयां गत्वा विशालामथवा पुनः ।

तथा—

विन्ध्यक्षेत्रस्य मातृभ्योऽथवा भक्त्या समर्पय ।

जीवितानां व्यसूनां वा विश्वनाथः परा गतिः ॥

अन्ततोगत्वा मैंने अपने मनमें निश्चय कर लिया कि नवरात्रके अवसरपर इन्हें ले जाकर काशी विश्वनाथकी शरणमें सौंप दूँगा। पूछनेपर उनकी सहर्ष स्वीकृति भी मिल गयी। संयोगवश मुझे जरूरी कार्यवश पटनाकी ओर जाना पड़ा, वहाँ चार-पाँच दिन ठहरा। गंगा-स्नान नित्य करता था। मैंने सोचा, शास्त्रोंमें श्राद्ध-तर्पणादिके करनेसे प्रेत-पितरोंकी तृप्ति होनेकी बात लिखी है। इन प्रेतात्माओंके कथानानुसार इन्हें खाने-पीने आदि बातोंमें कष्ट उठाने पड़ते हैं, अतः क्यों न इनके नामसे दो-चार जलांजलि दे दूँ? अतः ३-४ दिनोंतक नित्य उनके नामसे मैंने गंगामें तर्पण किया। बादमें घर लौटनेपर उन लोगोंसे अलग-अलग जिज्ञासा करनेपर पता चला कि इन चार दिनोंमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, बल्कि किसी अज्ञात शक्तिके द्वारा एक सुवर्णकी थालीमें नित्य भोजनके लिये मेवे-मिष्ठान्न उन्हें मिलते थे और खा-पी लेनेके बाद थाली जहाँ-की-तहाँ चली जाती थी। इस तरह प्रेतात्माओंसे प्रत्यक्ष सुन और अनुभवकर पारलौकिक विषयोंके सम्बन्धमें शास्त्रीय वचनोंकी सत्यता अक्षरशः प्रमाणित हुई और उनके प्रति मेरी आस्था और भी अधिकाधिक दृढ़ हो गयी।

एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें उनमेंसे एकने प्रसन्नतापूर्वक कहा—‘भाईजी! आज देवदूतने कहा है कि ‘तुमलोगोंकी यहाँ रहनेकी अवधि पूरी हो रही है। अब दो-चार दिन और कथा-पुराण सुन लो, फिर यहाँसे चल देना है। कुछ एकको तो भादोंके अन्ततक जन्म ले लेना है और कुछ दो वर्ष बाद इस योनिसे मुक्त होंगे; किंतु यहाँ किसीको रहना न होगा।’ यह सुनकर शीघ्र हमने योजना बना उन्हें ‘श्रीमद्भागवत-सप्ताह’ सुनाना आरम्भ किया। इस अवसरपर कितनी ही नयी बातें देखनेको मिलीं। जैसे अबतक कथामें न सम्मिलित होनेवाले मेरे विंशतिवर्षीय दिवंगत पुत्रका आना तथा मुझसे एवं पिताजीसे मिलकर बच्चीके माध्यमसे बातें करना, प्राण-त्यागका कारण बताना, जीवनकालकी

दर्शनार्थ एक दिन सीतामढ़ी जाना पड़ा। वे भी गयीं और वहाँ भी क्रमशः उनका परिचय पाकर तीर्थविधिसे दर्शनादिकर शामको घर वापस आया। उसी दिन उन आत्माओंको यहाँसे कुछ दिनोंके लिये उत्तर दिशामें ऊपरकी ओर जाना था। रातके नौ बजते ही वे बारी-बारीसे मेरे पास बच्चीके माध्यमसे आ-आकर पैर छू प्रणामकर चलने लगीं। मैंने पूछा—‘अभी इतना पहले ही क्यों जा रही हैं?’ उन्होंने कहा—११ बजेतक चले जाना है और देवदूत रथ लेकर खड़े हैं, जल्दी चलनेको कह रहे हैं।’ फिर वे घरके अन्य व्यक्तियोंसे मिलकर चले गये। ‘बच्चा बाबू’ से पता चला कि जाते समय वे आत्माएँ हमसे बिछुड़कर बहुत रो रही थीं। इधर मेरा भी हृदय करुणासे भर आया। आँखसे आँसू गिर पड़े। इस अवसरपर मेरा ‘बच्चा बाबू’ स्व० ज्येष्ठ पुत्र और उसके साथी अपनी प्रेतयोनिकी पत्नीके साथ नहीं गये। कारण, एक तो ज्येष्ठ पुत्र बीमार था, दूसरे उसकी पत्नीके प्रसव भी हुआ था, जिसमें जन्मोत्सव मनाने मेरी पत्नी भी आयी थी। ‘बच्चा बाबू’ से तो प्रतिदिनकी बातें मालूम होती ही थीं, पत्नीसे भी वस्तुस्थितिका यथावत् परिचय मिला। अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्रकी पत्नी और प्रसवकी बात सुन आश्चर्यान्वित होकर अपनी पत्नीसे मालूम हुआ कि दो वर्षोंतक उसे (स्व० पुत्रको) अकेले रहनेमें कष्ट होगा, अतः आग्रहपूर्वक मैंने ही विवाह करवा दिया है। फिर प्रेतयोनिमें सद्यः गर्भ रहता है और एक मासके अन्दर ही प्रसव भी। प्रेतशरीरकी आकृतिके विषयमें पूछनेपर पता चला कि पृष्ठभाग खाली और मुँहका छिद्र सूईके छिद्र-इतना होता। ईश्वरीय नियमसे बद्ध होनेके कारण चारों ओर अन्न-जलकी प्रचुरता होनेपर भी इच्छानुसार नहीं मिल पाता। गन्दे स्थानोंका जल तथा मारे-मारे फिरनेपर गन्दे स्थानों या दूकानोंमें फैले अन्नोंका रस मिल जाता है, जो पर्याप्त नहीं होता। किंतु जबसे भागवती कथाका इन्हें सुअवसर मिला, तबसे सारी असुविधाएँ दूर होती गयीं। मुझे भी उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रसन्नताका अनुभव होता रहा। उन्हीं लोगोंसे यह भी विदित हुआ कि ठीक इहलोककी तरह गाँवके २०-२५ हाथ ऊपर

अन्तरिक्षमें प्रेतलोक भी है। उनके भी गाँव-नगर बसे हैं। उनमें भी नौकर-चाकर, वैद्य-डॉक्टर, मूर्ख-पण्डित, साधु-वैरागी आदि सभी हैं, जैसा कि मनुष्यलोकमें होता है; क्योंकि कारणविशेषसे ही तो प्रेतयोनिमें जाते हैं और यह भी अनुभव किया कि अकाल-मृत्युसे या सर्पदंश, अग्निदाह, वृक्षपातादिसे मरनेपर ही लोग प्रेत होते हैं—ऐसी भी बात नहीं। बल्कि समयपर बिना किसी विघ्न-बाधाके मरने या विधिवत् अन्त्येष्टि क्रिया करनेपर भी लोग प्रेतयोनिमें निश्चित अवधितक वास करते हैं। अपने-अपने कर्मानुसार वहाँ भी सुख-दुःखसे जीवन जीते हैं। जीवनकालमें जो धर्मात्मा, आचारनिष्ठ, विद्वान् होते हैं, प्रेतयोनिमें उनकी वैसी ही स्थिति होती है और भगवान्की ओरसे सुख-भोगकी, घर-महल, खान-पान आदिकी सारी सुव्यवस्था यहाँकी अपेक्षा अधिक कर दी जाती है। जो यहाँ कर्महीन, पापात्मा, दुराचारी रहते हैं, वे वहाँ भी भूखे-प्यासे मारे-मारे फिरते हैं। गन्दे-सूने खण्डहरों, पेड़की डालियोंपर निवास करते हैं। पशुयोनिके प्रेतोंकी स्थिति धरतीके नीचे या ऊपर ही हड्डिके रूपमें रहती है, जबतक उन्हें रहना है; क्योंकि उनका तो दाह-संस्कार होता नहीं। प्रेतात्माओंने अपनी-अपनी स्थिति एवं घर-द्वार आदिके विषयमें भी पूरा विवरण दिया, जो यहाँ विस्तार-भयसे नहीं दिया जा सकता।

श्रावण (१९६१)–में मैं बीमार पड़ा। महीनों रोग-शय्यापर पड़ा रहा। इस दरमियान प्रेतात्माएँ बराबर आकर मेरी सेवा अपने निश्चित माध्यमसे कर जाया करतीं। भाद्र कृष्ण अष्टमीसे शुक्ल चतुर्थीके भीतर मेरी दिवंगता पत्नीका मुजप्फरपुरके 'कोरलहिया' ग्राममें कन्याके रूपमें तथा मेरी एक ग्रामीण बहनका सीतामढ़ीके पास भवदेवपुरमें ब्राह्मणकुल तथा उसकी माताका शूद्रकुलमें कहीं जन्म हो गया। ऐसी सूचना उन्हीं लोगोंसे मिली। जाँच करनेपर कोरलहियाकी बात सत्य निकली। भवदेवपुरकी जाँच न कर सका।

श्रीमद्भागवतकथाकी महिमा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। इसीके कारण प्रेतात्माओंसे परिचय मिला, उनका उद्धार हुआ तथा कितनी ही अद्भुत बातें की जा सकती हैं।

मुझे तो उस अवसरपर बराबर गोकर्ण और धुन्धकारीकी स्मृति आती रहती थी। आश्चर्य यह होता है कि वायवीय शरीर होनेके नाते धुन्धकारी बाहर न बैठ सकनेके कारण बाँसके छिद्रमें बैठता था, पर यहाँ ये लोग बाहर ही बैठा करते थे। इतना जरूर था कि देवयोनि होनेके कारण जमीनसे इनका स्पर्श न होता था।

नियमितरूपसे कथा सुननेवाले प्रेतात्माओंके नाम ये हैं—मेरी पत्नी (रामकुमारी), मेरे पुत्रद्वय (विनयकुमार, विजयकुमार), रामइकबाल (विनयका साथी जिन दोनोंका एक-डेढ़ माहके अन्दरसे अभिचार-प्रयोगात्मक सर्पदंशसे मृत्यु हुई), सिकली (रामइकबालकी बहन) और सिकलीकी माँ।

इन लोगोंके द्वारा जिन प्रेतात्माओंके परिचय मिले, उनके नाम ये हैं—मेरी माताजी (श्रीराजेश्वरी देवी मृत्यु १९४५ ई०); पूज्य चाचाजी पं० श्रीसरयूप्रसाद शर्मा (मृ० १९४६), बा० जोधीसिंह (मृ० १९५२), जय झा (मृ० १९४८), जयमन्त्र झा 'धुकू' (मृ० १९४२), कैलाशनाथ शुक्ल चहोत्तर (रायबरेली) निवासी (मृ० १९४५), मोहनदादा बैगना निवासी, सुभद्रा (विनयकी सहचरी) और जानकी (रामइकबालकी सहचरी)।

पूर्वोक्त प्रेतात्माओंके साथ ही इन लोगोंकी प्रेतयोनिकी अवधि पूरी हो गयी, सब-के-सब यहाँसे चले गये। उल्लिखित बातोंके अतिरिक्त भी बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिनका यहाँ समावेश ठीक नहीं जँचता। वैज्ञानिक इसका शोध करें। मुझे तो सबका सार इतना ही प्रतीत होता है कि शास्त्रीय वचन कितने अटल सत्य हैं, भगवत्कथा कितनी महिमामयी शक्तिशालिनी है, जिसके पानेको देवयोनिका प्राणी भी लालायित रहता है। अतः हम मानवदेहधारियोंको कल्याणार्थ अप्रमत्त हो शास्त्रीय सदाचारोंका पालन करते हुए निरन्तर भगवत्कथामृतका पान करना चाहिये।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं

प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।

अयं लोको नास्ति पर इति मानी

पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥

आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

बालक एवं माँ—दो माहका बालक है। उसके समस्त कार्य उसकी माँ करती है, जैसे—उसको स्नान करवाना, कपड़े पहनाना, सुलाना, दूध पिलाना, गन्दगी कर देनेपर सफाई करना, बीमार हो जानेपर दवा देना, उसकी पूरी देखरेख एवं सुरक्षा करना आदि। माँकी शक्ति एवं बुद्धि सीमित है, इसलिये माँसे भूल हो सकती है।

भगवान्का आश्वासन—भगवान्की शक्ति एवं भगवान्की बुद्धि असीम है, अनन्त है, अपार है। श्रीरामचरितमानस (३।४३।५) में भगवान् श्रीराम यह आश्वासन देते हैं कि मैं माँकी भाँति ही साधककी रखवाली करता हूँ। उनकी वाणी है—

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
इसका अर्थ है—मैं सदा उसकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालककी रक्षा करती है।

साधना—भगवान् आपकी रखवाली तभी करेंगे—जब आप एक विशेष प्रकारकी साधना करेंगे। उस साधनाका नाम है—केवल भगवान्का भरोसा करना या भगवान्पर निर्भर हो जाना या भगवान्का छोटा बेटा बन जाना। श्रीरामचरितमानस (३।४३।४—९) में भगवान् श्रीरामने अपने श्रीमुखसे इस साधनाको बताया है—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिजे मोहितजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता। प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥
जनहि मोर बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥

अर्थात् श्रीनारदजीने भगवान्से पूछा—जब आपकी मायाने मुझे मोहित कर दिया, तब मैं विवाह करना चाहता था। आपने मुझे विवाह क्यों नहीं करने दिया? तब भगवान्ने उत्तर दिया—‘हे मुनि! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं। मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ, जैसे माता बालककी रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है तो वहाँ माँ उसे [अपने हाथोंसे] अलग करके बचा लेती है। सयाना (बड़ा) हो

जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परंतु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती; क्योंकि वह मातापर निर्भर न होकर अपनी रक्षा आप करने लगता है।) ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है। मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानीको) अपना बल होता है, पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं। [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है; क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परंतु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है।]’

विश्लेषण—इस साधनाका विशद विवेचन इस प्रकार है—

(१) **दो साधक**—साधक दो प्रकारके होते हैं—भगवान्का बड़ा पुत्र और भगवान्का छोटा पुत्र। छोटे पुत्रका नाम है—सेवक और बड़े पुत्रका नाम है—ज्ञानी। सेवकके समस्त कार्य भगवान् करते हैं। ज्ञानीको अपने समस्त कार्य स्वयंको करने पड़ते हैं।

(२) **कार्य**—कार्य दो प्रकारके हैं—सांसारिक कार्य और पारमार्थिक कार्य। अपने शरीर, अपने घर, अपने परिवार, नौकरी, व्यवसाय, समाज आदिके कार्योंको सांसारिक कार्य कहते हैं। दुःखनिवृत्ति, परमशान्ति, जीवनमुक्ति, भगवद्भक्ति, भगवान्के दर्शन, भगवान्की प्राप्तिसे सम्बन्धित कार्योंको पारमार्थिक कार्य कहते हैं।

(३) **स्वाधीनता**—भगवान्ने आपको ज्ञानी एवं सेवक बननेकी पूर्ण स्वाधीनता दी है। आप चाहें तो सेवक बन जायँ, आप चाहें तो ज्ञानी बन जायँ।

(४) **कैसे बनें**—ज्ञानी एवं सेवक बननेमें न समय लगता है, न श्रम। इसमें न अभ्यास है, न प्रयास। इसमें शरीर और इन्द्रियोंकी सहायतासे कुछ भी नहीं करना पड़ता है। आप अभी-अभी एक पलमें ज्ञानी अथवा सेवक बन सकते हैं। कैसे? इसका उत्तर है—केवल सोचनेमात्रसे। यदि आप मनमें सोचते हैं कि मेरे पास जो भी बल है—शरीरका बल, इन्द्रियोंका बल, मन-बुद्धि-विवेकका बल,

सच्चाईको स्वीकार करनेमात्रसे आपका कर्तापन मिट जायगा, आप सेवक बन जायेंगे। आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे।

‘बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा’

(श्रीअमृतलालजी गुप्ता)

शान्ति किसे नहीं चाहिये? सभी तो अशान्त हैं, बेचैन हैं, व्याकुल हैं, दुखियारे हैं। किसीको इस बातका दुःख है तो किसीको उस बातका दुःख। आज एक बातका दुःख है तो कल दूसरी बातका। संसारके सारे लोग दुःख-संतप्त हैं। इन दुःखोंसे बाहर कैसे आये? इन दुःखोंसे छुटकारा कैसे पाये? सही अर्थमें सुख-शान्तिका जीवन कैसे जी सकें?

हमारे देशके ऋषियोंने, मुनियोंने इसी बातकी खोज की कि दुःखोंसे छुटकारा कैसे मिले ? सही अर्थमें सुख-शान्ति कैसे प्राप्त हो ? सब एक ही परिणामपर पहुँचे कि बिना हरिभजनके सुख-शान्ति नहीं मिल सकती । सबने अपने-अपने अनुभवके आधारपर मानवके क्लेश एवं तनावोंको मिटानेके उपाय बताये । भगवान् शिवजीने उमा (पार्वती) -से कहा—

उमा कहँ मैं अनुभव अपना । सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

उत्तरकाण्डमें काकभुशुण्डिजी भी अपना अनुभव बता रहे हैं—

निज अनुभव अब कहउँ खगेसा । बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥

(रा०च०मा० ७।८९।५)

अतः क्लेशोंसे मुक्ति एवं सच्ची सुख-शान्ति हरिभजनके अतिरिक्त किसी प्रकार नहीं मिल सकती लेकिन हरिभजन अर्थात् हरिभक्ति तभी सुख-शान्ति प्रदान करती है, जबकि उसे धारण किया जाय। भक्ति तो करें नहीं और उसकी चर्चा करें तो सुख-शान्ति नहीं मिलती। अतः समझें कि भक्ति हमारे व्यवहारमें कैसे उतरे।

भगवान्को चन्दन-पुष्प अर्पण करना, मात्र इतनेमें कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती, यह तो भक्तिकी एक प्रक्रियामात्र है। भक्ति तो तब होती है जब सबमें भक्तिभाव जागता है। ईश्वर सबमें है। 'मैं जो कुछ भी करता हूँ, उस सबको ईश्वर देखते हैं' जो ऐसा अनुभव करता है, उसको कभी पाप नहीं लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। वह अतिशुद्ध व्यवहार है

और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दम्भ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, उसे भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

मानव भक्ति करता है, परंतु व्यवहार शुद्ध नहीं रखता। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, वह मन्दिरमें भी भक्ति नहीं कर सकता। जिसका व्यवहार शुद्ध है, वह जहाँ बैठा है, वहीं भक्ति करता है और वहीं उसका मन्दिर है। व्यवहार और भक्तिमें बहुत अन्तर नहीं है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका—ऐसा विभाजन नहीं है। रास्ता चलते, गाड़ीमें यात्रा करते अथवा दुकानमें बैठकर धन्धा करते, सर्वकालमें और सर्वस्थलमें सतत भक्ति करनी है। भक्त बाजारमें शाक-भाजी लेने जाय, यह भी भक्ति है। उसका ऐसा भाव है कि—‘मैं अपने ठाकुरजीके लिये शाक-भाजी लेने जाता हूँ।’ प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसन्धान, इसे कहते हैं पृष्टिभक्ति।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करो तो वह भी भक्ति है। 'यह घर ठाकुरजीका है। घरमें कचरा रहेगा तो ठाकुरजी नाराज होंगे।' ऐसा मानकर झाड़ू देना भी भक्ति है। मेरे प्रभु मेरे हृदयमें विराजमान हैं, उन्हें भूख लगी है। ऐसी भावनासे किया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी माताओंको ऐसा लगता है कि कुटुम्ब बहुत बड़ा है, जिससे सारा दिन रसोईघरमें ही चला जाता है। सेवा-पूजा कुछ हो नहीं पाती, परंतु घरमें सबको भगवद्रूप मानकर की हुई सेवा भी भक्ति है। भक्ति करनेके लिये घर छोड़ने या व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। केवल अपने लिये ही कार्य करो, यह पाप है। घरके मनुष्योंके लिये काम करो, यह व्यवहार है और परमात्माके लिये काम करो, यह भक्ति है। कार्य तो एक ही है, परंतु इसके पीछे भावनामें बहुत फर्क है। महत्त्व क्रियाका नहीं, क्रियाके पीछे हेतु क्या है, भावना क्या है—यह महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरमें एक मनुष्य बैठा-

बैठा माला फेरे परंतु विचार संसारका करे, दूसरा मनुष्य प्रभुका स्मरण करते-करते बुहारी करे तो उस माला जपनेवालेसे यह बुहारी करनेवाला श्रेष्ठ है।

अपनी दिनचर्याकी सब क्रियाओंको भगवान्से जोड़ दें। हम स्नान कर रहे हैं। क्यों स्नान कर रहे हैं? शरीरको स्वच्छ करनेके लिये; क्योंकि हमें भजन करनेके लिये भगवान्के पास बैठना है। हमारे पसीनेकी दुर्गन्ध भगवान्को न आ जाय। इस भावनासे स्नान करना भी भक्ति हो गया। हमें कोई रोग लग गया, उसका उपचार करा लें क्यों? क्योंकि हम निरोग हो जायेंगे तो भगवान्का भजन अच्छे-से कर पायेंगे। इस भावनासे रोगका उपचार करना भी भक्ति बन गया। अतः अपने शरीरकी, मनकी सब क्रियाओंको भगवान्से जोड़ दें। इस प्रकार हमारी दिनचर्याकी सब क्रियाएँ भक्तिमय हो जायँगी।

व्यवहार करो। व्यवहार करना खोटा नहीं, परंतु जो व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसमें विवेककी आवश्यकता है। मनुष्यको सतत भक्तिमें आनन्द नहीं आता। अपने-जैसे साधारण मनुष्यका मन पाँच-छः घण्टे परमात्माका ध्यान, सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त कुछ और-और माँगने लगता है। निरन्तर मिठाई मिले तो मनमें अभाव होने लगता है, वैसे ही मनुष्यको सतत भक्ति करनेका अवसर मिलनेपर वह भक्ति नहीं कर सकता। भगवान्‌मेंसे उसका मन हट जाता है। जैसे शरीरको थकान होती है, वैसे ही मनको थकान होती है। पाँच-छः घण्टा सेवा करनेके उपरान्त मन थक जाता है। इसलिये दोनों प्रवृत्तियोंको ढूँढ़ता है। भक्तिके लिये प्रवृत्तियोंका निरन्तर त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्तियोंको सतत भक्ति बनाओ। भक्ति दो-तीन घण्टेकी नहीं, चौबीसों घण्टोंकी करो। अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिको भक्तिमय बनाओ, भक्ति बनाओ।

बड़े-बड़े संत भी प्रारम्भमें धन्धा करते थे। संत यह धन्धा करते-करते ही भक्ति करते थे और प्रभुको प्राप्त करते थे।

बुनकर थे, सेना भगत हजामतका काम करते थे।

ये सभी संत धन्धा करते थे, परंतु सबमें प्रभुको देखते। ग्राहकमें भी परमात्माका अनुभव करते। प्रत्येक महापुरुषको अपने धन्धेमेंसे ज्ञान मिला। प्राचीनकालमें महान् ज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्संगके लिये जाते। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिन उनको आकाशवाणीसे आज्ञा हुई कि सत्संग करना हो तो जनकपुरमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधारके यहाँ गये।

तुलाधार उस समय दुकानमें काम कर रहे थे। जाजलिको देखकर उन्होंने पूछा—क्या आकाशवाणी सुनकर आये हो? जाजलिको महान् आश्चर्य हुआ कि वैश्य और इतना महान्! तुलाधरसे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है?

तुलाधरने कहा—मेरा धन्धा ही मेरा गुरु है। मैं अपने तराजूकी डण्डी ठीक रखता हूँ। किसीको कम नहीं तोलता, बहुत नफा नहीं लेता। मेरी दुकानपर आनेवाला ग्राहक प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजूकी डण्डीकी तरह अपनी बुद्धिको ठीक रखता हूँ, टेढ़ी होने नहीं देता। अपने माता-पिताको परमात्माका स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ तथा धन्धा करता-करता मनमें मालिकका सतत स्मरण रखता हूँ।

धन्धा करनेमें ईश्वरको भूलो नहीं तो तुम्हारा धन्धा ही भक्ति बन जायगा। ठाकुरजीका दर्शन करनेमें यदि दुकान दीखे तो दुकानका काम-काज करनेमें भगवान् क्यों न दीखें? कोई-कोई वैष्णव दुकानमें श्रीद्वारिका-नाथजीका चित्र पधराते हैं, यह ठीक है, परंतु द्वारिकानाथ सदा हाजिर हैं, ऐसा समझकर व्यवहार करें, यह बहुत जरूरी है। जबतक देहका भान है, तबतक व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। व्यवहार करो परंतु व्यवहार करते-करते परमात्मा सबमें विराजते हैं, यह भूलो मत। व्यवहारमें अपने धर्मको मत छोड़ो। जीवनमें धर्म ही मुख्य है अन्य चीजें गौण हैं।

यदि हमारी दिनचर्याके व्यवहारमें भगवान्की भक्तिका रंग एक बार भी चढ़ गया तो हमारे जीवनके क्लेश एवं

कैसे लायें जीवनमें खुशियाँ ?

(डॉ० श्रीशैलजाजी आहूजा)

आमतौरपर लोग नहीं जानते कि खुशी क्या है ? ठेर सारे पैसे, ऐशो-आराम होते हुए भी आज लोग खुश नहीं हैं, जबकि जिनके पास ज्यादा कुछ नहीं होता, फिर भी वे खुश रहते हैं। सच्चाई तो यह है कि खुशी कहीं नहीं, बल्कि हमारे अन्दर हर समय मौजूद रहती है, जिसे हम देख नहीं सकते, पर महसूस कर सकते हैं।

वैज्ञानिकोंका दावा है कि उन्होंने खुशीके उस रहस्यको सुलझा लिया है, जो हमेशासे मनुष्यको परेशान करता आ रहा था। यह रहस्य जटिल नहीं, बल्कि बहुत सरल है। लोग यह समझते हैं कि खुशीका मतलब है—सच्चा प्यार, ठेर सारी दौलत या फिर बढ़िया-सी नौकरी, लेकिन वैज्ञानिकोंके अनुसार खुशीका एक फार्मूला (सूत्र) है—पीईएच।

इसमें 'पी' का मतलब-पर्सनल कैरेक्टरस्टिक अर्थात् इंसानके व्यक्तिगत लक्षण, जिनमें शामिल है—इंसानका जीवनके प्रति रवैया और विभिन्न परिस्थितियोंमें स्वयंको सन्तुलित रखनेकी क्षमता। 'ई' का मतलब है—एग्जिस्टेंस यानी अस्तित्व, जो हमारी सेहत, आर्थिक स्थिति और हमारे मित्रों-सम्बन्धियोंसे जुड़ा हुआ है। 'एच' का मतलब है—हायर आर्डर नीड्स अर्थात् आत्मसम्मान, दूसरोंके लिये स्वयंकी आवश्यकताओंका उत्सर्ग करनेकी आकांक्षा इत्यादि। इस तरह तीन अक्षरोंसे मिलकर बना यह खुशीका फार्मूला है, जिसे मनोवैज्ञानिकोंने शोधके उपरान्त तैयार किया है।

एक मनोवैज्ञानिक पीट कोहेनके अनुसार, 'ज्यादातर लोग यह नहीं जानते कि खुशी क्या है ? वे समझते हैं कि खुशी मिलती है बहुत सारे पैसेसे, बड़ेसे घर या बढ़िया मकानसे, लेकिन वास्तवमें सच यह है कि कई लोग यह सब कुछ होते हुए भी खुश नहीं हैं; चेहरेपर चमक नहीं है जबकि बहुत-से लोग इन सबके बिना भी बहुत खुश हैं और जिन्दगीका भरपूर सुख उठाते रहते हैं।'

कोहेनके अनुसार—वे लोग दुखी रहनेमें सबसे आगे हैं जो नकारात्मक चीजोंपर अधिक ध्यान देते हैं

जैसे जीवनमें क्या-क्या गलत है या उन्हें क्या-क्या अभीतक नहीं मिल पाया। इसके विपरीत वे लोग कम-से-कममें भी सुखी हैं, जिन्हें जो कुछ भी मिला है, वे उसीसे सन्तुष्ट हैं। मनोवैज्ञानिकोंके अनुसार नकारात्मक तत्त्व हमारे जीवनमें दुःख, असंतोष एवं अशान्तिका संचार करते हैं जबकि सकारात्मक तत्त्व हमें आन्तरिक खुशी, संतोष एवं शान्ति देते हैं।

खुशी बाजारमें मिलनेवाली कोई वस्तु नहीं है जिसे पैसे देकर खरीदा जा सके। इसका कोई आकार नहीं होता और न ही इसे चुराया जा सकता है। खुशी छोटी या बड़ी नहीं होती और न ही यह बड़ी चीजोंको हासिल करनेसे बनी रहती है। यह तो जिन्दगीकी छोटी-छोटी चीजोंसे मिलती रहती है। बस ! हमें उन्हें देखने तथा समझनेका तरीका नहीं आता।

'ए न्यू अर्थ' के लेखक एकहार्टका कहना है कि जिन्हें जीवनकी बड़ी खुशी समझा जाता है, जैसे—नयी कार खरीदना, अच्छी नौकरी हासिल करना, पगार बढ़ना आदि। एक तो ये जीवनमें बहुत कम आती हैं और दूसरा इन्हें महत्त्व देकर हम स्वयंको भुला देते हैं और स्वयंसे दूर हो जाते हैं; जबकि जीवनमें आनेवाली छोटी-छोटी खुशियाँ ही जीवनका आधार होती हैं और जीवनमें रोजाना भारी मात्रामें आती हैं, लेकिन हम अपने नकारात्मक दृष्टिकोणके कारण उन्हें देख नहीं पाते और न ही पर्याप्त महत्त्व देते हैं।

सच तो यह है कि जीवनमें बड़ी उपलब्धि एवं बड़ी खुशी पानेके लिये हम इन ठेर सारी छोटी-छोटी खुशियोंकी निरर्थक बलि देते रहते हैं और इस तरह न तो हम वर्तमानमें खुश रह पाते हैं और न ही भविष्यको सुखद कर पाते हैं। इसका कारण यह भी है कि निरन्तरके नकारात्मक चिन्तनसे और इस सोचसे कि जो हमें मिला है, वह कम है। हमारा स्वभाव ही कुछ इस तरहका बन जाता है कि हम जाने-अनजाने मिलनेवाली इन खुशियोंकी परवाह ही नहीं करते और सदा दुखी रहनेको अपना स्वभाव बना लेते हैं।

खुशी तो देनेकी चीज है, जिसे जितना बाँटो, वह

अपनी नकारात्मक सोचसे मुक्ति पानेके लिये सकारात्मक सोचको अपनाना जरूरी है और इसे अपनानेके लिये जरूरी है कि हम न केवल दिये गये उपायोंको अपनी सोचमें सम्मिलित करें वरन् उनका निरन्तर प्रयोग भी करें, तभी व्यक्तित्वमें स्थायी परिवर्तन ला पाना सम्भव होगा, जो हमारे सुखको बढ़ानेमें सहायक सिद्ध होगा।

गायोंकी चोरी रोकना आवश्यक

(श्रीमूलखराजजी विरमानी)

यह लेख नहीं, एक चेतावनी है कि गायकी घटती आबादी भयंकर स्थितिमें पहुँच गयी है। अनुमान है कि हर दिन लगभग एक लाख देशी गायें कटती हैं। इस अनर्थको बढ़ावा देनेके लिये बड़े वेगसे हर दिन कसाई नये ट्रक खरीद रहे हैं, जिनमें रातको चोरीसे सड़कों और गलियोंमें घूमती गायोंको बेहोशकर लादा जाता है। यह कसाई लोगोंके धन कमानेका सबसे आसान साधन बन गया है। शायद ही ऐसा कोई छोटा शहर या गाँव हो, जहाँ रातको ये ट्रक चक्कर लगा लगाकर गायको न उठाते हों।

स्वतन्त्रताके समय १२१ करोड़ गाय आज मात्र १० करोड़ रह गयी हैं। समाज अब भी नहीं चेता और जानकी बाजी लगाकर गायकी चोरी तथा कटाईको नहीं रोका तो गाय बचनेवाली नहीं है। हमारी लगभग गाय-सम्बन्धी सभी संस्थाएँ बड़े परिश्रमसे सभाएँ तो बहुत करती हैं और उनमें गायकी रक्षाके निमित्त ईट-से-ईट बजा देनेकी धमकियाँ भी देते हैं, कुछ प्रयास भी होते हैं, जिससे चोरी-छिपे कटनेके लिये ले जा रही कुछ गायोंको बचा भी लिया जाता है, परंतु अभीतक यह प्रयास अधूरे ही नहीं, बल्कि समस्याके हलके लिये नगण्य ही हैं। यह चेतावनी माँग करती है कि गायको बचानेके लिये हमें भाषणोंको छोड़ ठोस कदम उठानेकी आवश्यकता है। इस समय देशकी स्थिति यह है कि गलियों और बाजारोंमें रातको घूमती हुई गाय नितान्त असुरक्षित है। वास्तविक स्थिति यह है कि गाय-चोरोंका मनोबल इतना बढ़ गया है कि गायें सुरक्षित स्थान जैसे गोशालाओंसे भी रातको उठायी जा रही हैं। ऐसी घटनाओंमें वृन्दावनके परिक्रमामार्ग-स्थित एक आश्रमकी गोशाला है, जिनके महन्त और बाकी संत गायकी चोरी और सीनाजोरीको असहाय खड़े देखते और चिल्लाते रह गये, परंतु गायोंको बेहोशकर ट्रकमें भरकर ये लुटेरे ले गये। इस हादसेके पश्चात् वृन्दावनकी कुछ गोशालाओंने दो-दो गेट गायकी सुरक्षाके लिये लगवाये हैं, परंतु बहुत सारी गोशालाएँ धनके अभाव और उपेक्षाके कारण ऐसा नहीं कर पायीं। ऐसी असुरक्षाकी स्थितिमें गलियोंमें घूमती हुई या घरोंके सामने बँधी हुई गायोंकी सुरक्षा नहीं हो

पाती। गाय पालनेवालोंको चाहिये कि गायको बाहर न बाँधकर घरके आँगनमें पूरी सुरक्षा देकर रखें। यहाँपर रातको गश्त करती पुलिस कम सतर्क होनेके कारण गायोंको ट्रकोंमें लादकर ले जानेवाले चोर अपने काममें सफल रहते हैं।

गायोंकी सुरक्षाके लिये गाँवों और छोटे शहरों जहाँसे गायें उठ रही हैं, युवा लोग सुरक्षा दलके रूपमें रातको दो-दो घण्टेकी अवधिके लिये पहरा दें। ऐसे दलोंको अपनी सुरक्षाके लिये हथियार रखनेका लाइसेंस सरकार दे, तभी सुरक्षा सम्भव हो पायेगी। सुरक्षाके बारेमें अब ढील देनेकी कोई गुंजाइश नहीं; क्योंकि गायोंकी घटती हुई आबादी ऐसे स्थानपर पहुँच गयी है, जो महान् चिन्ताका विषय है।

यह सिद्ध हो चुका है कि देशी गायका दूध अमृतके समान है और इसके सेवनसे कई रोगोंका निदान हो जाता है। शहरमें रहनेवालोंको तो यह दूध नहीं मिलता, परंतु जिस गतिसे गाय कट रही है, उससे आनेवाले वर्षोंमें गाँव भी इससे वंचित हो जायँगे।

गोचारण भूमिका प्रयोग—गायके बचानेका एक साधन यह भी है कि सारी गोचारण भूमि जो लोगोंने हथिया ली है, वह गोशालाओंको वापस की जाय। बीते वर्षोंमें हर एक गाँव और छोटे शहरमें भी गायोंको प्रातः ही जंगलमें चरानेके लिये चरवाहे ले जाते थे। यह प्रथा अब न-के समान रह गयी है; क्योंकि जंगल अब बहुत कम रह गये हैं। इसका एक बड़ा साधारण हल यह है कि सरकार सरकारी जंगलोंको गायोंके चरनेके लिये छोड़ दे। गाय अगर दिनभर चरती है तो स्वस्थ तो रहती ही है और सायं वापस अपने स्थानपर आकर उसको बहुत कम खानेको चारा चाहिये होता है। गाय-सम्बन्धी संस्थाएँ इस बारेमें विचार करें और राज्य सरकारोंको बाध्य करें कि गोचारणकी भूमि और वनोंको केवल इसी कामके लिये छोड़ दें। इससे गायोंका भला तो होगा ही साथ ही जंगलोंको गोबर और गोमूत्रसे सींचती हुई गाय उन जंगलोंको पोषित भी करेगी।

सन्तों और उद्योगपतियोंसे प्रार्थना—अब प्रश्न आता है कि गायको समाजके लिये और कैसे अधिक

पालनेमें अधिक रुचि भी लेंगे। बड़े उद्योगपति साधनसम्पन्न तो होते ही हैं, उन्हें लाभदायक उद्योग चलानेकी कला भी आती है। यह तभी सम्भव है जब समाज यह समझे कि गायको बचाना है तो पंचगव्यसे बनी वस्तुओंका अधिक-से-अधिक प्रयोग करें। यह यदि सुचारु रूपसे हो तो निश्चित है कि उद्योगपतियोंको ऐसे उद्योग लगानेमें और उनका विस्तार करनेमें बल मिलेगा। इस कार्यमें हमारे महान् संत जो गायकी सुरक्षाके लिये हर सम्भव उपाय करनेको तत्पर हैं, वह उद्योगपतियोंको प्रेरित करें कि वह ऐसे उद्योग लगायें और पूरी योग्यता और लगनसे इन उद्योगोंको लाभार्ण चलायें।

(सिद्धि) मन्त्र (सिद्धि) मन्त्र

चराचर जगत्, हमारे उस प्यारे प्रभुकी ही अभिव्यक्ति है। ये सब उनको प्रिय हैं। ये सब उनके अपने हैं। तो मुझे अब क्या करना है ? अपने भाव-तत्त्वको पवित्र करनेके लिये देहका नाता मिटा करके, भगवत्-नाते सभीके प्रति सद्भाव और प्रेम मानना है। यहाँसे आकाश जैसा है।

मेरा सम्बन्ध किससे है ? तो मेरा सम्बन्ध केवल एकसे है, अनेकसे नहीं है। मैंने कई ईश्वरविश्वासियों को अपने महाराजजीके पास यह कहते हुए सुना है कि हे महाराज ! भगवान्को याद करने बैठी तो बहुत-सी बातें याद आने लगती हैं। तो महाराजजी कहते हैं कि देखो भैया ! जीवनमें तुमने केवल भगवान्का सम्बन्ध नहीं रखा है, दस सम्बन्ध तुम्हारे पहलेसे थे, अब तुमने ग्यारहवाँ सम्बन्ध परमात्माका मान लिया, तो जीवनमें एक बटा ग्यारह परमात्माकी याद आयगी और दस बटा ग्यारह संसारकी याद आयगी। ठीक है न ? हम लोगोंको क्या करना चाहिये ? अगर प्रेम-तत्त्वको विकसित करना है और उसे उस प्यारे प्रभुके लिये परम पवित्र बनाना है तो आसक्तिका बोझ उसमेंसे निकाल देना पड़ेगा। प्रेम-तत्त्व जो है, वह तो ऐसा अलौकिक तत्त्व है कि आप कितने भी अपराधमें फँस जाइये, कितने भी पतनके गड्ढेमें चले जाइये, उस अविनाशी तत्त्वका नाश नहीं होता। हमारी भूलोंसे वह दूषित हो जाता है। उसके

इसके लिये अनुभवी सन्तकी सलाह है कि शरीरके नातेसे सब सम्बन्ध मानना छोडकर अब प्रभुके नातेसे

नातस सब सम्बन्ध मानना छोड़कर अब प्रभु के नातस नहीं होता। हमारा भलास वह दाषित हो जाता है। उसक
Hinduism Discord Server <https://discord.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sh

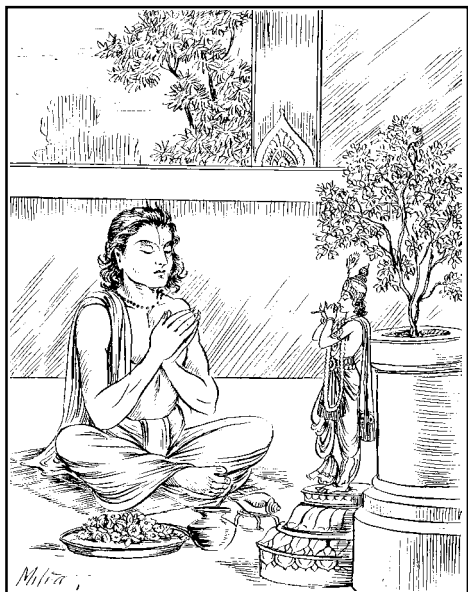
[प्रेषक—श्रीअरविन्द शारदाजी]

[प्रेषक—हरिकृष्ण नीखरा (गुप्त)]

जड़ी-बूटियोंकी शिरोमणि—तुलसी

(श्रीराजीवकुमारजी वैद)

सर्वरोगनाशक और अद्वितीय स्वास्थ्यप्रदायक गुणों एवं विशिष्ट रुचिकर स्वादके कारण वनौषधियोंमें तुलसी रानीके पदपर प्रतिष्ठित हैं। अतुलनीय रोगनिवारक गुणोंने इसका नाम तुलसी रखा है। तुलसी अर्थात् जिसकी कोई तुलना नहीं। मनुष्य-शरीरका शायद ही कोई अंग ऐसा हो, जिसपर इसका सुप्रभाव न पड़ता हो, वस्तुतः यह सर्वरोगनाशक संजीवनी बूटी है। जहाँ एक ओर प्राचीन



धर्मग्रन्थ इसके गुणोंके गीत गाते नहीं थकते, वहीं आधुनिक विज्ञान भी अनेक औषधीय तत्त्वोंकी उपस्थितिके आधारपर इसे संजीवनी बूटी सिद्ध करता है। तुलसीमें अनेक जैव सक्रिय रसायन पाये गये हैं, जिनमें ट्रैनिन, सेवोनिन, ग्लाइकोसाइड और एल्केलाइड्स प्रमुख हैं।

साधारण रोगोंकी तो बिसात ही क्या; कैसर, रक्तचाप, हृदयके वाल्वका रोग, मस्तिष्कका भयंकर रोग जिनमें डॉक्टर-हकीम लोगोंने हार मान ली हो, तुलसी समूल नाश करनेकी शक्ति रखती है। इसी प्रकारके असाध्य करार दिये गये रोगोंके निवारणहेतु एक ऊँची पहुँचवाले सन्त तुलसी-प्रयोगका निम्न नुस्खा बताते हैं—तुलसीके पत्तोंका १० ग्राम रस और १० ग्राम शुद्ध शहद या चालीस-पचास ग्राम ताजा दही सुबह-दोपहर-शामको लेना चाहिये। इस

नुस्खेका प्रयोगकर उनके सैकड़ों भक्तोंको चमत्कारिक लाभका अनुभव हुआ है। प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० शरण प्रसादने अपने सैनीटोरियममें हृदय रोगके रोगियोंपर तुलसीका औषधीय प्रयोग किया है। उन्होंने तुलसी काढ़ेका सेवन करारकर शत-प्रतिशत सफलतापूर्वक उन्हें रोगमुक्त किया है। सर्दी-जुकाम, बुखारमें प्रायः बड़े-बूढ़े तुलसीकी चायके सेवनकी सलाह देते हैं, पर यह सर्दी-जुकाम, खाँसी ही नहीं, अन्य अनेकों व्याधियोंको दूर करनेकी सामर्थ्य रखती है। एक लम्बी फेहरिशत है—गुर्दोंकी पथरी, सफेद दाग या कोढ़, शरीरका मोटापा; वृद्धावस्थाकी दुर्बलता, पेचिश, अम्लता, मन्दाग्नि, कब्ज, गैस, दिमागी कमजोरी, स्मरण-शक्तिका अभाव, पुरानेसे पुराना सिरदर्द, रक्तचाप, श्वसन रोग, शरीरकी झुर्रियाँ आदि। तुलसी गुर्दोंकी कार्य-क्षमता बढ़ाती है। इसके सेवनसे विटामिन 'ए' एवं 'सी' की कमी दूर होती है।

इतने सारे गुणोंपर मुग्ध होकर यदि कोई तुलसीका सेवन करना चाहे तो किसी भी सुविधाजनक ढंगसे प्रयोग कर सकता है, यथा—तुलसीकी चाय बनाकर (काढ़ारूपमें) या दो-चार पत्ते चबाकर ऊपरसे पानी पीकर या रातको थोड़े-से पानीमें पत्ते डालकर रख दें सुबह उस पानीको पीयें। अन्य खाद्य पदार्थोंमें मिश्रित करके आदि। ताजी अवस्थामें तुलसीपत्रका उपयोग ही श्रेष्ठ है, यदि उपलब्ध न हो तो छायामें सुखाये पत्तोंके चूर्णका सेवन कर सकते हैं। जड़ एवं बीजचूर्ण या समग्र सूखे पौधेका चूर्ण भी इस्तेमाल किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि तुलसीके बीजोंमें वीर्यको गाढ़ा बनानेकी अद्भुत क्षमता होती है। बीजचूर्ण एक उत्तम वाजीकारक औषधि है। आचार्य प्रियव्रत शर्माके अनुसार मूत्रदाह एवं मूत्र-विसर्जनमें कठिनाई तथा ब्लैडरकी सूजनमें एवं पथरीमें बीजचूर्ण तुरंत लाभ करता है। कुष्ठकी यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है। डॉ० जी० नादकर्णीके अनुसार तुलसीमें कुछ ऐसे गुण हैं, जिनके कारण यह शरीरकी विद्युतीय संरचनाको सीधे प्रभावित करती है।

शोकविह्वल जानकीने धीरेसे उठकर, जलझारीसे जल लेकर गिद्धराजको श्वसुरके रूपमें जलांजलि प्रदान करते हुए कहा, 'आंजनेय! अब तुम प्रभुके पास जा रहे हो। उनके तृणरूपी जिस बाणके प्रतापसे सौमित्रि भी अपरिचित हैं, उन्हें कागवेषी देवेन्द्रपुत्र जयन्तके नेत्रहर्ता उस बाणका स्मरण कराना। मेरा प्रभुके प्रति यही सन्देश है।'

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

arma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma
रातम उस वृद्धको बुलाकर पूछताछ की गयी तो

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

जबतक देहभाव रहता है, तभीतक भोगवासना और अनेक प्रकारके दोष रहते हैं और तभीतक दोषोंका नाश करके चित्तशुद्धिके लिये साधन करना रहता है। चित्तका सर्वथा शुद्ध हो जाना और सब प्रकारसे असत्का संग छूट जाना ही ब्रजमें प्रवेश है। अतः जिस साधकको गोपी-प्रेम प्राप्त करना हो, उसे चाहिये कि पहले मुक्तिके आनन्दतकका लालच छोड़कर ब्रजमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करे और उसके बाद भगवान्की कृपापर निर्भर होकर गोपीभावको प्राप्त करे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

सभी रूपों तथा स्थितियोंमें भगवान्को देखें

सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला था। आपका स्वास्थ्य इधर ठीक नहीं रहता, सो यह तो शरीरका स्वरूप ही है। आप विद्वान् हैं; आपने शास्त्रोंका अध्ययन किया है; आप जानते हैं—जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि इस पांचभौतिक शरीरके साथ लगी ही हुई हैं। जो बना है, वह नष्ट होगा ही—जो जन्मा है, वह मरेगा ही। मृत्युसे डरनेकी आवश्यकता नहीं। विचार करें तो जन्मकी अपेक्षा मृत्युमें कल्याणकी सम्भावना अधिक है और मृत्यु होते ही परमानन्दस्वरूपकी प्राप्ति सम्भव है। जन्म ग्रहण करनेमें तथा जन्म होनेपर शिशु-अवस्थामें अज्ञानतामें दुःख है; वह अज्ञानजनित दुःख किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता; पर मृत्युके समय यदि सावधानी रहे तो मृत्युकालमें सुख रहता है और मृत्यु होते ही 'परम सुख' मिल सकता है। 'जन्म' होनेपर अकल्याणकी कोई सम्भावना ही नहीं; क्योंकि फिर जन्म ही नहीं होता। सुधरी मृत्युका अर्थ है—मृत्युके समय हमारी ब्राह्मी स्थिति रहे या श्रीभगवान्की अनन्य अखण्ड स्मृति रहे। जहाँ भगवान्की अखण्ड स्मृति है, वहाँ जगत्की सर्वथा विस्मृति है। ऐसी स्थितिमें मृत्यु सुखपूर्वक होती है और मृत्युके उपरान्त तुरंत ही मृत्युकालीन भगवत्स्मृतिके अनिवार्य फलस्वरूप भगवत्प्राप्ति हो जाती है; जीव कृतकृत्य हो जाता है।

मृत्यु कब आ जाय, इसका पता नहीं; अभी अगले ही क्षण मृत्यु हो सकती है। अतएव अभीसे भगवान्की अखण्ड स्मृतिका साधन करने लगना चाहिये। चाह सच्ची तथा तीव्र होगी और भगवत्कृपाका भरोसा होगा तो भगवान्की स्मृति अखण्ड हो जायगी—वही अनन्य हो जायगी। फिर मृत्यु चाहे जब आ जाय, आपके मनकी वृत्ति उसे भगवत्स्मृतिमें ही लगी मिलेगी। अतः वह मृत्यु बड़ी मंगलमयी बन जायगी; सारी भावी मृत्युओंको मारकर वह स्वयं ही मर जायगी। ऐसी

भगवत्प्राप्ति करानेवाली मृत्यु ही 'सुधरी मृत्यु' है। इस प्रकार मृत्यु सुधरे, इसके लिये प्रयत्नमें तुरंत लग जाना चाहिये।

आप बुद्धिमान् हैं, सब समझते हैं। इस जगत्-प्रपंचमें कहीं कुछ भी सार नहीं है। वास्तवमें जगत् ही नहीं; सर्वथा असत् है, अज्ञानसे ही दिखायी दे रहा है और यदि कहीं अज्ञानकी सत्ता मान लेनेपर यह 'है' तो है—क्षणभंगुर, अनित्य, अपूर्ण, दुःखयोनि, दुःखालय। अतएव इससे विरक्त होकर भगवत्स्मृतिमें लग जाइये—चाहे इसे 'दुःखरूप' मानकर, चाहे सर्वथा 'असत्' मानकर।

यों तो सारी ही उनकी लीला है। भगवान्की लीलामें और लीलामय भगवान्में नित्य अभेद है; अतएव अस्वस्थता और मृत्युके रूपमें भी उन लीलामयकी स्वरूपाभिन्न लीला ही हो रही है। यह समझकर इस अस्वस्थतामें भी उनके मंगल दर्शन कीजिये। यही आपके रोगकी परम औषधि है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

तन्त्र-मन्त्रके नामपर ठगी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने जो घटनाएँ लिखीं और तान्त्रिकों तथा ज्योतिषियोंके द्वारा बार-बार धोखा खाने एवं भयानक रूपसे नुकसान उठानेकी बात लिखी, सो अवश्य ही बड़े दुःखकी बात है। मेरे विश्वासके अनुसार तन्त्र-मन्त्र, उसके प्रयोग, ज्योतिषशास्त्र—फलित ज्योतिष, ग्रहशान्ति-कर्म आदि सब सत्य हैं। अनुष्ठानोंसे देवता प्रत्यक्ष होते हैं, देवाराधनसे कार्योंमें सफलता प्राप्त होती है और शास्त्रीय प्रबल अनुष्ठानोंसे नवीन प्रारब्धका निर्माण भी होता है—सिद्धान्ततः ये सभी सत्य हैं, परंतु इनके नामपर आजकल ठगी और धोखाधड़ी बहुत चल रही है। मेरी जानकारीके सम्बन्धमें पूछा, सो सच्ची बात तो यह है कि दो—एक अनुभवी पुरुषोंके सिवा शेष लोगोंमें मुझे अधिकांशमें या तो अनुभवहीन तथा क्रियाशून्य केवल शास्त्र पढ़कर बतानेवाले लोग मिले या धोखा देकर पैसे

आपकी ही भाँति मेरे पास बहुत-से लोग अपने-अपने अभाव, दुःख-कष्टोंको लेकर आते हैं, पत्र लिखते हैं, मुझसे किन्हीं अच्छे, अभाव तथा कष्ट-दुःखोंको अनुष्ठानादिके द्वारा दूरकर सकें—ऐसे पुरुषोंके नाम-पते पूछते हैं; पर बार-बार धोखा खाये जानेके कारण मैं किन्हींका भी नाम-पता उन्हें नहीं बता सकता। इसीलिये आपको भी ऐसे नाम-पते बतानेमें असमर्थ हूँ। पहले किन्हींके सफल अनुष्ठानको देखकर मुझे स्वयं उनपर पूरा विश्वास हो जाय, तब मैं दूसरोंको उम्माना नाम बताऊँ। अतथा लोगोंको कानूनोंमें और चार्ज

ही शास्त्रोंपर अश्रद्धा उत्पन्न करानेमें मैं कारण नहीं बनना चाहता। अतएव आपको क्या लिखूँ। आप किसीके भी फेरमें न पड़ें। उचित समझें और कर सकें तो स्वयं श्रद्धापूर्वक भागवतोक्त ‘गजेन्द्रस्तुति’ और ‘नारायणकवच’ के ग्यारह-ग्यारह पाठ प्रतिदिन कीजिये। ये दोनों पुस्तकें गीताप्रेससे प्रकाशित हैं। साथ ही—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

—इस मन्त्रका सम्पुट लगाकर पैंतालीस दिनोंतक दुर्गासप्तशतीका प्रतिदिन एक पाठ कीजिये। आशा है, इससे आपको लाभ होगा। शेष भगवत्कृपा।

(३)

भगवान्‌के मंगलविधानपर विश्वास करनेसे
शान्ति मिलती है

सम्मान्या बहन, सस्नेह हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपका दुःख यथार्थ है और यह मिटना भी चाहिये; पर पता नहीं, प्रारब्धके भोग कैसे हैं। आप अपने मनमें अपने पतिके प्रति सदा सद्भाव रखिये, उनकी मंगलकामना कीजिये, जो करती ही हैं। जो कष्ट वे आपको दे रहे हैं—उसे भगवान्‌का विधान मानकर सहन कीजिये। आपका इस जगत्‌का सम्बन्ध आरोपित है। यहाँ तो स्वाँगके अनुसार अनासक्तभावसे खेल करना है। आप ‘शरीर’ तथा ‘नाम’ नहीं हैं, आत्मा हैं, आपका सम्बन्ध भगवान्‌से है। भगवान्‌ आपको अपने धाममें सुख-निवास देनेके लिये इन दुःखोंके द्वारा तपाकर पवित्र कर रहे हैं। इन्हें दुःख न मानकर भगवान्‌का मंगलकारी मंगल विधान मानिये। भगवान्‌ आपके नित्य सुहृद् हैं—वे कभी आपका अहित नहीं करते। जैसे सुयोग्य सर्जन रोगीके कल्याणके लिये उसके अंग काटता (ऑपरेशन करता) है, वैसे ही इसे परम सुहृद् भगवान्‌का किया हुआ ऑपरेशन मानिये। भगवान्‌ने कहा है कि ‘मेरी सुहृदयतापर विश्वास करते ही, उसे जानते ही शान्ति मिल जाती है’—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।

शोध ~~MADE WITH LOVE~~ BY Avinash/Shalini

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ७।२ बजेतक	सोम	आश्लेषा रात्रिमें ९।३९ बजेतक	२५ जनवरी	सिंहराशि रात्रि ९।३९ बजेसे, अभिजितका सूर्य रात्रिमें १०।८ बजे।
द्वितीया " ७।४८ बजेतक	मंगल	मघा " ११।१२ बजेतक	२६ "	भद्रा रात्रि ८।२५ बजेसे, गणतन्त्रदिवस, मूल रात्रिमें ११।१२ बजेतक।
तृतीया दिनमें ९।१ बजेतक	बुध	पू०फा० " १।१३ बजेतक	२७ "	भद्रा दिनमें ९।१ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।४० बजे।
चतुर्थी " १०।४० बजेतक	गुरु	उ०फा० " ३।३२ बजेतक	२८ "	कन्याराशि प्रातः ७।४७ बजेसे।
पंचमी " १२।३८ बजेतक	शुक्र	हस्त रात्रिशेष ६।६ बजेतक	२९ "	" " " " " "
षष्ठी " २।४७ बजेतक	शनि	चित्रा अहोरात्र	३० "	भद्रा दिनमें २।४७ बजेसे रात्रिमें ३।५१ बजेतक, तुलाराशि रात्रिमें ७।२४ बजेसे।
सप्तमी सायं ४।५५ बजेतक	रवि	चित्रा दिनमें ८।४२ बजेतक	३१ "	श्रीरामानन्दाचार्य-जयन्ती।
अष्टमी रात्रिमें ६।५४ बजेतक	सोम	स्वाती " ११।१३ बजेतक	१ फरवरी	अष्टकाश्राद्ध।
नवमी " ८।३५ बजेतक	मंगल	विशाखा " १।२७ बजेतक	२ "	वृश्चिकराशि प्रातः ६।५३ बजेसे।
दशमी " ९।४९ बजेतक	बुध	अनुराधा " ३।२० बजेतक	३ "	भद्रा दिनमें ९।१२ बजेसे रात्रिमें ९।४९ बजेतक, मूल दिनमें ३।२० बजेसे।
एकादशी " १०।३६ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा सायं ४।४५ बजेतक	४ "	धनुराशि सायं ४।४५ बजेसे, षटतिला एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।४९ बजेतक	शुक्र	मूल " ५।४० बजेतक	५ "	तिलद्वादशी, मूल सायं ५।४० बजेतक।
त्रयोदशी " १०।३३ बजेतक	शनि	पू० षा० रात्रिमें ६।५ बजेतक	६ "	भद्रा रात्रिमें १०।३३ बजेसे, मकरराशि रात्रिमें १२।४ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत, धनिष्ठाका सूर्य रात्रिमें ४।४३ बजे।
चतुर्दशी " ९।४७ बजेतक	रवि	उ० षा० " ६।० बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें १०।१० बजेतक।
अमावस्या " ८।३६ बजेतक	सोम	श्रवण सायं ५।३० बजेतक	८ "	कुंभराशि रात्रिशेष ५।५ बजेसे, सोमवती-मौनी अमावस्या, पंचकारम्भ रात्रिशेष ५।५ बजे।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।१ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा सायं ४।३९ बजेतक	९ फरवरी	" " " " " "
द्वितीया सायं ५।६ बजेतक	बुध	शतभिषा दिनमें ३।२७ बजेतक	१० "	चन्द्रदर्शन।
तृतीया दिनमें ३।० बजेतक	गुरु	पू० भा० " २।२ बजेतक	११ "	भद्रा रात्रिमें १।५२ बजेसे, मीनराशि दिनमें ८।२३ बजेसे।
चतुर्थी " १२।४२ बजेतक	शुक्र	उ० भा० " १२।२७ बजेतक	१२ "	भद्रा दिनमें १२।४२ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल दिनमें १२।२७ बजेसे।
पंचमी " १०।२० बजेतक	शनि	रेवती " १०।४६ बजेतक	१३ "	मेघराशि दिनमें १०।४६ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें १०।४६ बजे, श्रीवसन्तपंचमी, कुम्भसंक्रान्ति रात्रिमें ६।१९ बजे।
षष्ठी प्रातः ७।५८ बजेतक	रवि	अश्विनी " ९।७ बजेतक	१४ "	भद्रा रात्रिशेष ५।४२ बजेसे, रथसप्तमी, अचला सप्तमी। मूल दिनमें ९।७ बजेतक।
सप्तमी रात्रिशेष ५।४२ बजेतक	सोम	भणी प्रातः ७।३३ बजेतक	१५ "	भद्रा सायं ४।३९ बजेतक, वृषराशि दिनमें १।१२ बजेसे।
अष्टमी रात्रिमें ३।३६ बजेतक		कृत्तिका रात्रिशेष ६।९ बजेतक		
नवमी " १।४२ बजेतक	मंगल	रोहिणी " ४।५८ बजेतक	१६ "	महानन्दानवमी।
दशमी " १२।८ बजेतक	बुध	मृगशिरा रात्रिमें ४।९ बजेतक	१७ "	मिथुनराशि सायं ४।३३ बजेसे।
एकादशी " १०।५६ बजेतक	गुरु	आर्द्रा " ३।४१ बजेतक	१८ "	भद्रा दिनमें ११।३२ बजेसे रात्रिमें १०।५६ बजेतक, जया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १०।१० बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु " ३।३९ बजेतक	१९ "	कर्कराशि रात्रिमें ९।४० बजेसे, सायन मीनका सूर्य दिन २।५७ बजे।
त्रयोदशी " ९।५३ बजेतक	शनि	पुष्य " ४।६ बजेतक	२० "	शनिप्रदोषव्रत, शतभिषाका सूर्य दिनमें ८।२० बजे, मूल रात्रिमें ४।६ बजेसे।
चतुर्दशी " १०।७ बजेतक	रवि	आश्लेषा रात्रिशेष ५।३ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें १०।७ बजेसे, सिंहराशि रात्रिशेष ५।३ बजेसे।
पूर्णिमा " १०।५४ बजेतक	सोम	मघा अहोरात्र	२२ "	भद्रा दिनमें १०।३० बजेतक, माघी पूर्णिमा, माघ स्नान समाप्त।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पूर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १२।७ बजेतक	मंगल	मघा प्रातः ६।३१ बजेतक	२३ फरवरी	मूल प्रातः ६।३१ बजेतक।
द्वितीया " १।४७ बजेतक	बुध	पू० फा० दिनमें ८।२५ बजेतक	२४ "	कन्याराशि दिनमें ३।० बजेतक।
तृतीया " ३।४५ बजेतक	गुरु	उ० फा० " १०।४२ बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें २।४६ बजेसे रात्रिमें ३।४५ बजेतक।
चतुर्थी रात्रिशेष ५।५३ बजेतक	शुक्र	हस्त " १।१३ बजेतक	२६ "	तुलाराशि रात्रिमें २।३२ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ९।४ बजे।
पंचमी अहोरात्र	शनि	चित्रा " ३।५१ बजेतक	२७ "	सर्वार्थसिद्धियोग दिनमें ३।५१ बजेसे।
पंचमी दिनमें ८।० बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ६।२४ बजेतक	२८ "	x x x
षष्ठी " ९।५५ बजेतक	सोम	विशाखा " ८।४२ बजेतक	२९ "	भद्रा दिनमें ९।५५ बजेसे रात्रिमें १०।४५ बजेतक।
सप्तमी " ११।३३ बजेतक	मंगल	अनुराधा " १०।४० बजेतक	१ मार्च	मूल रात्रिमें १०।४० बजेसे।
अष्टमी " १२।४४ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा " १२।१२ बजेतक	२ "	धनुराशि रात्रिमें १२।१२ बजेसे, श्रीजानकी-जयन्ती।
नवमी " १।२७ बजेतक	गुरु	मूल " १।१५ बजेतक	३ "	भद्रा रात्रिमें १।३३ बजेसे, मूल रात्रिमें १।१५ बजेतक।
दशमी " १।३७ बजेतक	शुक्र	पू० षा० " १।४६ बजेतक	४ "	भद्रा दिनमें १।३७ बजेतक, पूर्वाभाद्रपदका सूर्य दिनमें १।५३ बजे।
एकादशी " १।१७ बजेतक	शनि	उ० षा० " १।४८ बजेतक	५ "	मकरराशि प्रातः ७।४५ बजेसे, विजया एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " १२।२७ बजेतक	रवि	श्रवण " १।२३ बजेतक	६ "	प्रदोषव्रत।
त्रयोदशी " ११।१२ बजेतक	सोम	धनिष्ठा " १२।३६ बजेतक	७ "	भद्रा दिनमें ११।१२ बजेसे रात्रिमें १०।२४ बजेतक, महाशिवरात्रिव्रत, कुम्भराशि दिनमें १।० बजे, पंचकारम्भ दिनमें १।० बजे।
चतुर्दशी " ९।३५ बजेतक	मंगल	शतभिषा " ११।२९ बजेतक	८ "	श्राद्धादिकी अमावस्या।
अमावस्या प्रातः ७।३७ बजेतक	बुध	पू० भा० " १०।६ बजेतक	९ "	अमावस्या, मीनराशि सायं ४।२६ बजेसे, ग्रस्तोदित खण्ड सूर्यग्रहण।
प्रतिपदा रात्रिशेष ५।२८ बजेतक				

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
द्वितीया रात्रिमें ३।१० बजेतक	गुरु	उ० भा० रात्रिमें ८।३३ बजेतक	१० मार्च	मूल रात्रिमें ८।३३ बजेसे।
तृतीया " १२।४६ बजेतक	शुक्र	रेवती " ६।५३ बजेतक	११ "	मेघराशि रात्रिमें ६।५३ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ६।५३ बजे।
चतुर्थी " १०।२२ बजेतक	शनि	अश्विनी सायं ५।१३ बजेतक	१२ "	भद्रा दिनमें ११।३४ बजेसे रात्रिमें १०।२२ बजेतक, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल सायं ५।१३ बजेतक।
पंचमी " ८।५ बजेतक	रवि	भरणी दिनमें ३।३७ बजेतक	१३ "	वृषराशि रात्रिमें ९।१६ बजेसे।
षष्ठी सायं ५।५७ बजेतक	सोम	कृत्तिका " २।२० बजेतक	१४ "	मीन संक्रान्ति दिनमें १।३३ बजे, खरमासारम्भ, वसन्त ऋतु प्रारम्भ।
सप्तमी दिनमें ४।२ बजेतक	मंगल	रोहिणी " १२।५६ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ४।२ बजेसे रात्रिमें ३।१६ बजेतक, मिथुनराशि रात्रिमें १२।३० बजेसे, होलाष्टकारम्भ।
अष्टमी " २।२९ बजेतक	बुध	मृगशिरा " १२।३ बजेतक	१६ "	बुधाष्टमी।
नवमी " १।१७ बजेतक	गुरु	आर्द्रा " ११।२८ बजेतक	१७ "	कर्कराशि रात्रिशेष ५।२२ बजेसे, उत्तराभाद्रपदका सूर्य रात्रिमें ९।४५ बजे।
दशमी " १२।३२ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु " ११।२१ बजेतक	१८ "	भद्रा रात्रिमें १२।२४ बजेसे।
एकादशी " १२।१४ बजेतक	शनि	पुष्य " ११।४२ बजेतक	१९ "	भद्रा दिनमें १२।१४ बजेतक, आमलकी एकादशीव्रत (सबका), मूल दिनमें ११।४२ बजेसे।
द्वादशी " १२।२७ बजेतक	रवि	आश्लेषा " १२।३२ बजेतक	२० "	सिंहराशि दिनमें १२।३२ बजेसे, प्रदोषव्रत, सायन मेघका सूर्य दिनमें १२।२४ बजे।
त्रयोदशी " १।१५ बजेतक	सोम	मघा " १।५५ बजेतक	२१ "	शक सं० १९३८ प्रारम्भ, मूल दिनमें १।५५ बजेतक।
चतुर्दशी " २।२९ बजेतक	मंगल	पू० फा० " ३।४४ बजेतक	२२ "	भद्रा दिनमें २।२९ बजेसे रात्रिमें ३।१९ बजेतक, कन्याराशि रात्रिमें १०।१८ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा, होलिकादाह रात्रिमें ३।१९ बजे भद्राके बाद।
पूर्णिमा " ४।८ बजेतक	बुध	उ० फा० सायं ५।५७ बजेतक	२३ "	पूर्णिमा, काशीमें होली, चैतन्य महाप्रभु-जयन्ती।

कृपानुभूति

निरक्षर श्रद्धालु भक्तपर श्रीमद्भगवद्गीताकी कृपा

(श्रीसूदर्शनसिंहजी 'चक्र')

‘स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।’

(योगदर्शन २।४४)

अर्थात् स्वाध्यायसे इष्टदेवताका साक्षात्कार होता है। यहाँ स्वाध्यायका अर्थ है—मन्त्र—जप, लेकिन एक अच्छे सन्तने अपने सहज ढंगसे स्वाध्यायकी जो व्याख्या की, वह भी भूलनेयोग्य नहीं है। वे कहते थे—‘स्वाध्यायका अर्थ है ‘स्व’ अपना + अध्याय अर्थात् वह ग्रन्थ या मन्त्र, जिसे तुमने अपनाया है, वह तुम्हारे अपने जीवनका एक अंग—अध्याय हो जाय।’

पाठ करनेसे एक विशेष प्रकारकी शक्ति प्राप्त होती है। जैसे स्नान करनेसे शरीर स्वच्छ होता है और स्फूर्ति आती है, वैसे ही नित्यपाठ आन्तरिक स्नान है। इससे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और मानसिक प्रेरणा मिलती है साधनके लिये।

आप गीता, भागवत या श्रीरामचरितमानसका कोई श्लोक अथवा चौपाई कण्ठ कर लें, जो आपको बहुत साधारण लगे और मन-ही-मन उसे बार-बार दुहराते रहें। धैर्यपूर्वक दो-चार दिन उसको दुहरायें। ऐसा करनेसे अचानक किसी समय आपको उसका ऐसा अर्थ सूझेगा, जो स्वयं आपको चकित कर देगा। यह उसके उस अर्थपर पड़ा आवरण उसके बार-बार पाठ करनेसे दूर हुआ। इसी प्रकार अन्तःकरणमें ही स्थित परमात्मतत्त्वपर जो आवरण है, वह पाठ करते रहनेसे दूर होता है या शिथिल पड़ता है।

पाठ करना तो फिर भी बड़ी बात है, पाठ करनेका संकल्प और उसकी चेष्टा भी चमत्कार उत्पन्न करती है. यह मैंने देखा है।

वाराणसी जिलेमें एक गाँव है महुअर। जब देशका स्वाधीनता आन्दोलन चल रहा था, तब उस गाँवके एक क्षत्रिय यवक सत्याग्रह आन्दोलनमें मेरे साथी थे। नाम

तो उनका जयनाथसिंह था, किंतु सब उन्हें जैनुसिंह कहते थे। उनके सगे भाई देवनाथसिंह, जिन्हें देऊसिंह कहा जाता था, मुझसे सम्भवतः सन् १९३८ ई० में मिले। वे सत्याग्रह आन्दोलनमें तो सम्मिलित नहीं हुए थे, किंतु मुझे जानते थे।

मैं सन् १९३६ ई० से ही वाराणसीसे दूर हो गया था और सन् १९३७ ई० से मेरठसे निकलने वाले मासिक-पत्र 'संकीर्तन' का सम्पादन करने लगा था। उस समय मैं मेरठसे अपनी जन्मभूमिके क्षेत्रमें बहुत थोड़े दिनोंको आया था।

एक दिन देवनाथसिंह आये और मेरे समीप कुछ समयतक बैठे रहे, फिर एकान्त मिलनेपर बोले—‘मेरी इच्छा गीता-पाठ करनेकी होती है। अब इस आयुमें गाँवके किसी व्यक्तिसे अक्षर पढ़ने बैठनेमें लज्जा आती है। कोई उपाय बतलाइये।’

वे जमींदार थे। उन दिनों सम्पन्न ग्रामीण किसान-जमींदार अपने या अपने पुत्रोंके लिये पढ़ना-पढ़ाना अनावश्यक मानते थे। कह देते थे—‘लड़केको पढ़ाकर क्या करना है। उसे कोई नौकरी करनी है?’

मैं जानता था कि जयनाथसिंह, जो मेरे कांग्रेस-आन्दोलनके साथी थे, उन्होंने भी कांग्रेस-आन्दोलनमें आनेके पश्चात् अक्षरज्ञान सीखा और धीरे-धीरे हिन्दीकी पुस्तकें पढ़ने लगे थे। उनके भाई देवनाथसिंह भी निरक्षर ही थे।

किसी भी आयुमें पढ़ने लगना कोई लज्जाकी बात नहीं है, यह भले सत्य है, किंतु ३०-३५ वर्षके ग्रामीण युवकको यह तथ्य समझा देना मुझे सरल नहीं लगा और जिसे वर्णमालाकी पहचान भी न हो, उसे गीता-पाठ करनेकी भला कौन-सी युक्ति मैं बतला देता।

यह तो अब मैं जानता हूँ कि बाबा नन्दजीने भी

यह तथ्य उन्हें मैंने बतलाया तो वे भाव-विह्वल हो गये, उनकी आँखोंसे अश्रु बहने लगे। गद्गद स्वरमें बोले—
‘मुझ-जैसे साधारण व्यक्तिपर भगवानकी इतनी कृपा!’

इसके बाद वे मुझे मिले प्रयाग-झूसीमें और हरिद्वारमें। तब थे तो गृहस्थ-वेशमें ही, किंतु पैदल अकेले पूरे भारतकी तीर्थयात्रा कर रहे थे। तीन बार उन्होंने लगातार यह पैदल तीर्थयात्रा की और चौथी बार ऐसी ही यात्रा करते द्वारका पहुँचे तो श्रीद्वारकाधीशके दर्शन करते समय ही मन्दिरमें उनका शरीर छूट गया।

यह घटना इतने विस्तारसे देनेका कारण यह है कि मैं इसमें बहुत-कुछ प्रत्यक्ष साक्षी रहा हूँ। सुनी-सुनायी बात नहीं है और पाठ तथा कन्हारईकी कृपाका अच्छा उदाहरण है।

श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध कथावाचक एवं विद्वान् पण्डित श्रीनाथजी पुराणाचार्य (वृन्दावन) इसे ‘ग्रन्थ-कृपा’ कहते हैं। उनका कहना है—‘गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस—जैसे ग्रन्थ मन्त्रात्मक हैं और चेतन हैं। इनका श्रद्धापूर्वक आश्रय लिया जाय तो पाठ करनेवालेपर ये कृपा करते हैं।

वृन्दावनमें अनाज मण्डीमें लगभग सन् ३७-३८ में एक अत्यन्त वृद्ध महात्माके दर्शन किये थे। उनका नाम श्रीअवधदासजी था। वे श्रीमद्भागवतको ही आराध्य मानते थे और सदा भागवतका मासिक क्रमसे पाठ करते थे। वृद्धावस्थामें दृष्टिलोप हो जानेपर भी आसनपर बैठकर ग्रन्थ सामने रखकर पाठ करते थे। ग्रन्थ तो उन्हें कण्ठस्थ था और उसी अनुमानसे पन्ने उलटते जाते थे।

कहनेका तात्पर्य है कि आप अपने आराध्य-इष्टके चरित, गुण आदि जिसमें हों उस ग्रन्थको निष्ठापूर्वक अपनाकर उसका नित्य पाठ करेंगे तो आपपर ग्रन्थ-कृपा भी होगी और आपमें इष्टके प्रति भक्तिका जागरण भी होगा।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

निरपराध प्राणीको सतानेका फल

घटना लगभग ५५ वर्ष पुरानी है, पर है सत्य। यह घटना खास मेरठकी है। मेरठ जंक्शनसे शहरको जो सड़क जाती है, उसी सड़कपर एक मिलिट्रीका फार्म है। एक दिनकी बात है, कुछ दूरीपर कुछ महिलाएँ बैठी हुई अपनी खुरपीसे घास खोद रही थीं। उन्होंने घास खोद-खोदकर ढेर लगा रखा था। अकस्मात् जंगलसे उस ओर एक खरगोश भागता हुआ आ गया। उधर ही दो कुत्ते भी संयोगसे आ निकले। कुत्तोंकी जो दृष्टि खरगोशकी ओर गयी तो फिर क्या था, कुत्ते उस खरगोशको खानेके लिये पकड़ने दौड़ पड़े और उस खरगोशके पीछे हो लिये। जिधरको भी वह खरगोश जाता, वे भी उसके पीछे दौड़ने लगते, बेचारा खरगोश अब तो बड़ा परेशान हुआ और कभी तो अपने प्राण बचाता हुआ इधरको भागे और कभी अपने प्राण बचाता हुआ उधरको भागे, पर कुत्ते उसके पीछे लगे रहे और उन्होंने खरगोशका पीछा करना नहीं छोड़ा। इस दृश्यको देखनेके लिये इधर-उधरके कितने ही मनुष्य वहाँपर इकट्ठे हो गये, पर किसीने भी उस बेचारे खरगोशके प्राण बचानेकी तनिक भी चेष्टा नहीं की और कुत्तोंको नहीं भगाया और न ही मारा; बल्कि उलटे खड़े-खड़े देखते रहे और उसे एक अच्छा खासा तमाशा समझकर इसे देखते रहे और इसमें बड़ी दिलचस्पी लेते रहे कि देखें, अब क्या होता है? किस प्रकार कुत्ते इसे पकड़कर दबोचते हैं और कैसे खाते हैं? अब उस बेचारे खरगोशका एकमात्र उस भगवान्‌के अतिरिक्त और कौन रक्षक था, कौन अपना था, जो उसकी रक्षा करता और उसके प्राण बचाता? जब उस खरगोशने देखा कि मुझे अब कुत्तोंने चारों ओरसे घेर लिया है और जंगलमें भागनेके लिये अब कोई रास्ता नहीं है, अब प्राण नहीं बचेंगे तो वह बेचारा एकदम झटसे छलाँग मारकर और दौड़कर उन महिलाओंने जो घासका ढेर लगा रखा था, उस घासके ढेरमें घुस गया और चुपचाप

छुपकर बैठ गया। अब तो सब दर्शकोंको यह देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई, सबने उस ईश्वरको बड़ा धन्यवाद दिया और कहा कि चलो, इस बेचारे खरगोशके भगवान्‌ने प्राण बचा दिये। आज यदि यह यहाँपर घास न होती तो बेचारा खरगोश कभी नहीं बचता, मारा जाता। भगवान्‌ने पहले ही इसे बचानेके लिये यहाँपर घासका ढेर लगवा दिया था। जिसके भगवान्‌ रक्षक हैं, भला उसे कौन मारनेवाला है? खरगोशको और अन्य दर्शकोंको यह कहाँ पता था कि यह एक बार तो कालके मुँहमेंसे साफ बच गया है, पर अभी दूसरी बार फिर कालके मुँहमें जाना बाकी है और भगवान्‌को इसे पुनः साफ बचाकर अपनी दूसरी अब्दुत लीला और चमत्कार दिखाना बाकी है।

बात यह हुई कि भगवान्‌की अब्दुत महिमाकी जब ये बातें दर्शकोंके मुखसे पासमें खड़े हुए एक घोर उद्‌ण्ड नास्तिकने सुनीं, जो ईश्वरको नहीं मानता था तो उसे यह बातें सहन नहीं हुई और उसका पारा चढ़ गया। वह बड़ा चिढ़ा और बड़ी जोरसे ईश्वरका मजाक उड़ाते हुए और ठट्ठा मारकर हँसते हुए आगे बढ़ा। उसने घासके ढेरमें अपना हाथ घुसेड़कर उस खरगोशको पकड़ लिया। अब क्या था? अब तो खरगोश बड़ा छटपटाया। उसने उसके दोनों कान अपने एक हाथसे पकड़कर उसे अधरमें लटकाते हुए अपने दूसरे हाथसे किरपाण निकालते हुए कहा कि तुम लोग कहते हो कि इस खरगोशको भगवान्‌ने बचा लिया। यह बात तुम्हारी बिलकुल गलत है, इसमें भगवान्‌के बचानेकी क्या बात थी? यह तो इस समय इत्तफाकसे घासके ढेरमें घुस गया। इसलिये यह कुत्तोंद्वारा मरनेसे बच गया। अब लो, मैं इस खरगोशकी इस अपनी किरपाणसे गरदन काटकर मारता हूँ और—

‘हुण असि देखेंगे इसदे भगवान्‌ नु कैसे बचाता है?’

देखेंगे कि तुम्हारा भगवान्‌ अब इसे मरनेसे कैसे बचाता है और अब इस खरगोशकी तुम्हारा भगवान्‌ कैसे रक्षा करता है? भगवान्‌को खुले रूपमें दी गयी

उस नास्तिककी चुनौतीको सबने सुना और सुनकर सबके चेहरे एकदम फीके पड़ गये और अब तो सब बड़े ही घबड़ाये और टकटकी लगाये इस अब्धुत दृश्यको देखने लगे कि अब क्या होता है ? अब तो यह किसीको भी यह विश्वास नहीं था कि अब इस खरगोशकी किसी प्रकार रक्षा हो सकेगी और इस जालिमके हाथोंसे इस बेचारेके प्राण बच सकेंगे; वह जालिम साक्षात् काल बनकर उनके सामने खड़ा था और सब मुर्देकी तरह एकटक इस दृश्यको देख रहे थे और किसीमें भी ऐसा साहस नहीं था कि जो ईश्वरको भी चुनौती देनेवाले इस नास्तिक जालिमको ललकारता और इस नास्तिकके सामने आने और उसकी रक्षा करनेका साहस करता ? अब तो बस चारों ओर निराशा-ही-निराशा थी। ठीक उसी समय जबकि वह जालिम अपने एक हाथमें खरगोशके कान पकड़कर उसे अधरमें लटकाये हुए था और खरगोश बड़ा भयभीत एवं छटपटा रहा था, उधर वह नास्तिक अपने दूसरे हाथमें किरपाण लिये उसकी गरदनपर वार करके उसके प्राण लेना चाहता था, तभी ईश्वरीय लीलाने अपना वह अब्धुत चमत्कार दिखाया कि जिसे देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये और दाँतों तले अँगुली दबा लिये। चारों ओर 'जय हो-जय हो', 'धन्य-धन्य', 'वाह-वाह' की ध्वनि गूँज उठी। बात यह हुई कि उस नास्तिक उद्वण्डने ज्यों ही यह कहकर कि 'हुण असि देखेंगे इसदे भगवान नु कैसे बचाता है' चमचमाती किरपाण हाथमें लेकर खरगोशकी गरदन काटनेको चलायी तो वह किरपाण उस खरगोशकी गरदनकी ओर तनिक भी न जाकर सीधे ऊपरकी ओर गयी और जिस हाथसे वह खरगोशके कान पकड़ उसे अधरमें लटकाये हुए था, ठीक उसी हाथपर जाकर लगी और हाथको पहुँचेतक चीर डाला—फाड़ डाला, बड़े जोरसे खूनके फव्वारे छूटने लगे। वह खरगोश तो साफ छूटकर जंगलकी ओर भाग गया और वह व्यक्ति एकदमसे बेहोश होकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे चारपाईपर डालकर अस्पताल पहुँचाया गया। होश आते ही उसकी सारी नास्तिकता

झड़ गयी और अक्ल ठिकाने आ गयी। जो एक महान् विपत्तिग्रस्त निरपराध खरगोशकी रक्षा करनेके बदले उसके प्राण लेनेपर उतारू हो गया था और बड़े गर्वके साथ उस जगन्नियन्ताको चुनौती दे रहा था, वह जालिम खरगोशका बाल भी बाँका नहीं कर सका और उलटा अपना हाथ अपनी ही किरपाणसे स्वयं अपने हाथसे काटकर सदा-सर्वदाके लिये टोंटा बन बैठा, अपनी करनीका और निरपराध प्राणीको सतानेका प्रत्यक्ष फल सदाके लिये भुगत बैठा। इसे कहते हैं ईश्वरीय लीलाका अद्भुत चमत्कार!

कौन कहता है कि ईश्वर नहीं है और ईश्वर जिसको बचाना चाहे, उसे कौन मार सकता है ? आखिर 'अनाथके नाथ' और 'निर्बलके बल' तो वे ही हैं।

—भक्त रामशरणदास

(२)

श्रीमद्भगवद्गीता-श्रवणका अद्भुत चमत्कार

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता ९।२२)

यह प्रसंग लगभग २५ वर्ष पुराना है। सन् १९८९ ई० में मेरी बहनका विवाह हुआ था। प्रातः बारातियोंकी विदाईकी तैयारी हो रही थी। तभी अचानक मेरी माताजीको बेहोशी आ गयी, सभी लोगोंके प्रयाससे लगभग आधे घण्टेमें होश आ गया। सभी लोग अपने-अपने गन्तव्यको चले गये।

लेकिन इसके बाद भी महीना-दो महीनापर बेहोशी आ जाती थी। अतः इलाज करवाना आवश्यक था। फलतः आर्थिक तंगीके बावजूद इलाज करवानेहेतु राँची (झारखण्ड) डॉ० पी० आर० प्रसादके पास ले गया। देखकर उन्होंने रोगको हृदयरोग कहा और दवाइयाँ लिखीं। दवाइयोंका दाम पूछनेपर दुकानवालेने ६०० या ७०० रुपये बताया, जो आजीवन चलना था।

मैंने रुपयोंके अभावमें दवाई नहीं खरीदी और माँसे कहा कि प्रत्येक माह इतनी महँगी दवा चलाना पिताजीकी आमदनीसे बहुत मुश्किल है। उस समय

मनन करने योग्य

स्वामिभक्ति धन्य है

महाराणा संग्रामसिंह स्वर्ग पधारे। मेवाड़के सिंहासनके योग्य उनका ज्येष्ठ पुत्र विक्रमादित्य सिद्ध नहीं हुआ। राजपूत सरदारोंने उसे शीघ्र सिंहासनसे उतार दिया। छोटे कुमार उदयसिंह अभी शिशु थे। उनका राज्याभिषेक तो हो गया; किंतु दासीपुत्र बनवीरको उनका संरक्षक बनाया गया। बालक राणा उदयसिंहकी ओरसे बनवीर राज्य-संचालन करने लगा।

बनवीरके मनमें राज्याका लोभ आया। एक रात्रिको वह स्वयं नंगी तलवार लेकर उठा और राजभवनमें निःशंक सोते राजकुमार विक्रमादित्यकी उसने हत्या कर दी। उसका यह क्रूर कर्म राजभवनमें दोने-पत्तल उठानेका काम करनेवाला सेवक देख रहा था। वह दौड़ा हुआ राणा उदयसिंहकी धाय पन्नाके पास गया। उसने बतलाया—‘बनवीर इसी ओर आ रहा है।’

पन्नाके एक पुत्र था चन्दन, किंतु स्वर्गीया रानी करुणावती और राणा साँगाके कनिष्ठ पुत्र उदयसिंहका भी लालन-पालन वही कर रही थी। चन्दन और उदयसिंह उसके दो नेत्र थे। अयोग्य विक्रमादित्यके राज्यसे पृथक् कर देनेपर उदयसिंह बनवीर दासीपुत्रकी संरक्षामें उत्तराधिकारी घोषित हुए थे। बनवीर मेवाड़पर निष्कण्टक राज्य करना चाहता था।

पन्ना धायने दो क्षणमें कर्तव्य निश्चित कर लिया। उसने सोते हुए उदयसिंहके वस्त्र उतार लिये और उन्हें एक टोकरीमें लिटाकर ऊपरसे दोने-पत्तलसे ढक दिया। वह टोकरी उस सेवकको देकर कह दिया—‘चुप-चाप राजभवनसे बाहर निकल जाओ। नगरके बाहर नदीके पास मेरी प्रतीक्षा करना।’

निद्रित उदयको उसी प्रकार टोकरीमें पत्तलोंके नीचे छिपाकर बारी बाहर निकल गया। पन्नाका हृदय जोरोंसे धड़क रहा था। पर वह मौन तथा शान्त थी।

अपने पुत्र चन्दनको उस स्वामिभक्ता धायने उदयसिंहके कपड़े पहिनाकर उनके पलंगपर सुला दिया। इतनेमें ही रक्तसे सनी तलवार लिये बनवीर आ पहुँचा। उसने पूछा—‘उदय कहाँ है?’

हृदयपर पत्थर रखकर पन्नाने अपने बच्चेकी ओर



संकेत कर दिया। एक ही झटकेमें उस बालकका मस्तक बनवीरने शरीरसे पृथक् कर दिया। वह शीघ्रतासे वहाँसे चल दिया। पन्ना अपने पुत्रका शव लिये नदी-किनारे पहुँची। आज वह खुलकर रो भी नहीं सकती थी। पुत्रका शरीर नदीमें विसर्जित करके वह उदयसिंहको लेकर वहाँसे चली गयी।

‘अपने राजाकी रक्षा करो।’ सर्वत्र निराश होकर पन्ना देयरके शासक आशाशाहके पास पहुँची और उदयको उनकी गोदमें डाल दिया।

समय आया जब कि बड़े होकर उदयसिंहने बनवीरको उसके कर्मका दण्ड दिया और मेवाड़के सिंहासनको भूषित किया। पन्ना धायके अपूर्व त्यागने ही राणाके कुलकी रक्षा की। धन्य है ऐसी स्वामिभक्ति!

इतिहास साक्षी है, बनवीरके कुकर्मोंका उसे भरपूर फल मिला। उदयसिंह मेवाड़के सिंहासनपर आरूढ़ हुए।

वीर उदयसिंहने मातृ-तुल्य पन्नाके चरण-स्पर्श किये। पन्ना महान् थी—इसे प्रत्येक इतिहासकार सादर लिखते हैं।

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

‘कल्याण’

-के ८९वें वर्ष (वि०सं० २०७१-७२, सन् २०१५ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- अछूत [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया] सं०१२-पृ०३४		२१- एक पलके सत्संगसे प्रभुप्राप्ति (डॉ० श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) सं०४-पृ०३२	
२- अध्यात्मशक्तिसे लाभ (पण्डित श्रीलालजी रामजी शुक्ल, एम० ए०) सं०८-पृ०३३		२२- एकान्त कहीं नहीं सं०११-पृ०९	
३- अनन्तमें निवास (श्रीब्रजमोहनजी मिहिर) सं०९-पृ०११		२३- कर्मभोग एवं कर्मप्रायश्चित्त (श्रीसुदर्शनसिंहजी ‘श्रीचक्र’) सं०६-पृ०४१	
४- अनन्यताकी महत्ता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०१२-पृ०१२		२४- कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका साधन क्या है ? (श्रीबरजोरसिंहजी) सं०६-पृ०२५	
५- अन्त मति सो गति (श्रीइन्द्रमलजी राठी) सं०३-पृ०२४		२५- कल्याण— सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५- पृ०५, सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०- पृ०५, सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५	
६- अपने साधनके अनुकूल संग करे (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०१०-पृ०१४		२६- ‘कल्याण’ का आगामी ९०वें वर्ष (सन् २०१६ ई०)-का विशेषाङ्क ‘गंगा-अङ्क’ सं०५-पृ०४७	
७- अपेक्षा है विषादकी जननी (डॉ० श्रीशैलजाजी) ... सं०३-पृ०१९		२७- कहो मारुति ! गिद्धराज कैसे हैं ? [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग] (आचार्य श्रीरामरंगजी) सं०१२-पृ०३३	
८- अभिशाप नहीं है प्रतिकूलता (श्रीताराचन्दजी आहूजा) सं०५-पृ०२०		२८- कृपाभूति सं०३-पृ०४४, सं०४-पृ०४४, सं०५-पृ०४२, सं०६-पृ०४६, सं०७-पृ०४६, सं०८-पृ०४६, सं०९-पृ०४६, सं०१०- पृ०४६, सं०११-पृ०४१, सं०१२-पृ०४१	
९- अशुद्ध कमाई तथा शुद्ध कमाईके धनका प्रभाव (श्रीशिवकुमारजी गोयल) सं०५-पृ०१२		२९- कैसे लायें जीवनमें खुशियाँ ? (डॉ० श्रीशैलजाजी आहूजा) सं०१२-पृ०२७	
१०- आगेकी सुध ले (श्रीअवनीन्द्रजी नागर) सं०१०-पृ०१६		३०- कोई वस्तु व्यर्थ मत फेंको सं०१०-पृ०२९	
११- आचार्यश्री सत्य कहते थे [लघुकथा] (श्रीसुभाषजी खन्ना) सं०५-पृ०३६		३१- कोखकी कीमत [बोधकथा] (श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी) सं०५-पृ०२२	
१२- आत्मीयता [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया] सं०११-पृ०३३		३२- गाढ़ी कमाई (श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल) सं०७-पृ०१४	
१३- आध्यात्मिक विजय और शान्ति (श्रीरामकिशोरजी सिंह ‘विरागी’) सं०८-पृ०४१		३३- गायोंकी चोरी रोकना आवश्यक (श्रीमुलखराजजी विरमानी) सं०१२-पृ०२९	
१४- आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करनेका अचूक साधन (ब्रह्मलीन वीतराग स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) [प्रेषक—श्रीज्ञानचन्दजी गर्ग] सं०१०-पृ०२३		३४- गिरिराज गोवर्धन [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग] (आचार्य श्रीरामरंगजी) सं०८-पृ०२९	
१५- आपके समस्त कार्य भगवान् कर देंगे (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) सं०१२-पृ०२३		३५- गोपी-प्रेम (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०१२-पृ०३६	
१६- आवरणचित्र-परिचय सं०२-पृ०२५, सं०३-पृ०३७, सं०४-पृ०४२, सं०५-पृ०१७, सं०६-पृ०२४, सं०८-पृ०२४, सं०९- पृ०३७, सं०१०-पृ०६, सं०११-पृ०६, सं०१२-पृ०६		३६- गोबरमें भगवती लक्ष्मीका निवास सं०९-पृ०४१	
१७- आस्तिकता सदाचारकी जननी है (डॉ० श्रीविद्याभास्करजी वाजपेयी) सं०६-पृ०३५		३७- गोवंशका विनाश—देशकी अर्थव्यवस्थापर कुठाराघात (श्रीसुभाषजी पटेल) सं०६-पृ०३९	
१८- ईश्वर और संसार (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .. सं०८-पृ०६		३८- गोशालाओंकी सुरक्षा [सम्पादक] सं०३-पृ०५०	
१९- उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् (डॉ० श्रीशिवेन्द्रप्रसादजी गर्ग, ‘सुमन’) सं०४-पृ०१६		३९- गोसेवाकी प्रेरणा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .. सं०३-पृ०६	
२०- ऊर्जाका अक्षय स्रोत—गोबर गैस (सर्वोदय विचार परिषद्) सं०९-पृ०४१		४०- छोटा-बड़ा कौन है ? (महात्मा पं० श्रीशम्भुदयालजी शर्मा) सं०७-पृ०९	

विषय	पृष्ठ-संख्या
४१- जड़ी-बूटियोंकी शिरोमणि—तुलसी (श्रीराजीवकुमारजी वैद)	सं०१२-पृ०३२
४२- जीवनकी उपलब्धि [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०५-पृ०३३
४३- जीवनमें सफलताके सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	सं०३-पृ०२५
४४- ज्योति निष्कम्प है [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—] (आचार्य श्रीरामरंगजी)	सं०६-पृ०३१
४५- तुलसीका लोकजागरण (श्रीरामचाकरजी)	सं०८-पृ०२४
४६- तुलसीके हनुमान् (डॉ० श्रीआद्याप्रसादसिंहजी 'प्रदीप')	सं०११-पृ०२५
४७- तुलसी-साहित्यमें विवाह-संस्कारकी वृहद् व्याख्या (डॉ० नीतू सिंह)	सं०९-पृ०२४
४८- तेजीसे विलुप्त होती देशी गाय (श्रीमनोजजी भार्गव)	सं०८-पृ०४२
४९- दरिद्र और श्रीमान् (बहन श्रीजयदेवीजी)	सं०६-पृ०१०
५०- 'दानी कहूँ संकर-सम नाही' (श्रीमोहनलालजी चौबे, एम०ए०, बी०एड०, साहित्यरत्न)	सं०६-पृ०३७
५१- दुःखकी निवृत्तिका उपाय (स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती)	सं०११-पृ०१४
५२- दूसरेको हानि पहुँचानेका मुझे क्या अधिकार है ? [प्रेरक प्रसंग] (श्रीजयदेवप्रसादजी बंसल)	सं०८-पृ०२८
५३- दूसरोंकी निन्दा किसी हालतमें न करो	सं०४-पृ०१८
५४- द्रष्टा बनिये (सुश्री कृष्णा कुमारीजी)	सं०७-पृ०३६
५५- धनकी अन्धपूजा (श्रीरमणलाल बसंतलाल देसाई)	सं०११-पृ०२०
५६- धरतीका अमृत—गायका दूध (श्रीबरजोरसिंहजी)	सं०११-पृ०३४
५७- धरतीकी लाड़िलीका लाड़ला [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग] (आचार्य श्रीरामरंगजी)	सं०१०-पृ०३४
५८- धर्मानुष्ठानोंमें श्राद्ध, पिण्डदान और गया (डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि', एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट०)	सं०९-पृ०३०
५९- नसीबकी चाभी कर्मके हाथ (डॉ० गो० दा० फेगडे)	सं०७-पृ०३१
६०- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची	सं०१२-पृ०४७
६१- निम्बार्क-सम्प्रदायकी सेवा-भक्ति (पं० श्रीरामस्वरूपजी गौड़ 'निम्बार्कभूषण')	सं०३-पृ०३३
६२- निःस्वार्थ सेवा—सर्वोत्कृष्ट उपासना (प्रो० श्रीराधेमोहनप्रसादजी)	सं०२-पृ०१७
६३- नीति-विभूषण (श्रीसुभाषचन्द्रजी बग्गा)	सं०११-पृ०२१
६४- पढ़ना और है, गुनना और! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ..	सं०५-पृ०२९
६५- पढ़ो, समझो और करो	सं०३-पृ०४५, सं०४-पृ०४५, सं०५- पृ०४३, सं०६-पृ०४७, सं०७-पृ०४७, सं०८-पृ०४७, सं०९-पृ०४७, सं०१०-पृ०४७, सं०११-पृ०४२, सं०१२-पृ०४३
६६- पतनोन्मुख मानव-समाजकी रक्षा कैसे हो ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०४-पृ०१२
६७- परमभागवत परीक्षित (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	सं०१०-पृ०१०
६८- परम सेवा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ..	सं०२-पृ०६

विषय	पृष्ठ-संख्या
६९- परहित सरिस धर्म नहीं भाई (श्रीसुरेन्द्रकुमारजी 'शिष्य' एम० ए०, एम० एड०, साहित्यरत्न)	सं०२-पृ०१९
७०- पारिवारिक जीवनकी दृढ़ भित्तियाँ—प्रेम, सहिष्णुता और सेवा (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	सं०२-पृ०४०
७१- पिताका कर्ज [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०१०-पृ०३८
७२- पितृ-ऋण [लघुकथा] (श्रीअरविन्दजी मिश्र)	सं०९-पृ०२३
७३- पूर्ण गोहत्या-बन्दीकी दिशामें महाराष्ट्रका एक कदम (—राधेश्याम खेमका)	सं०४-पृ०५०
७४- पं० रामाधार मिश्र—एक विलक्षण सन्त [सन्तचरित] (डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी, एम०ए०, पी-एच०डी०)	सं०११-पृ०२९
७५- प्रतिग्रह और पापसे भी ऋण अधिक हानिकर है (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ..	सं०१०-पृ०७
७६- प्रतिशोधकी भावनाका त्याग करके प्रेम कीजिये (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०८-पृ०१४
७७- प्रभु श्रीरामके कतिपय श्रेष्ठ सेवक (डॉ० श्रीअजितकुमार सिंहजी)	सं०१०-पृ०३०
७८- 'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीधिन' (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	सं०३-पृ०२८
७९- प्रेमकी विलक्षण एकता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०१२-पृ०७
८०- प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०७-पृ०११
८१- बलजी-भूरजी [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०६-पृ०३४
८२- बागकी रक्षाका अधिकार है, फल खानेका नहीं	सं०७-पृ०२५
८३- 'बिनु हरि भजन न जाहिँ कलेसा' (श्रीअमृतलालजी गुप्ता)	सं०१२-पृ०२५
८४- ब्रह्म और देवताओंका अभिमान (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	सं०११-पृ०१०
८५- ब्रह्मसूत्रके अणुभाष्यमें भगवत्सेवाका स्वरूप (शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय वैष्णवाचार्य गोस्वामी श्रीशरदकुमारजी महाराज)	सं०२-पृ०३०
८६- भक्त किशनसिंहजी [भक्तगाथा] (पं० श्रीहरद्वारीलालजी शर्मा 'हिन्दीप्रभाकर')	सं०९-पृ०१८
८७- भगवत्कथासे प्रेतोद्धार (श्रीरामकेदारजी शर्मा)	सं०१२-पृ०१९
८८- भगवान्के विशुद्ध प्रेमका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०६-पृ०६, सं०७-पृ०६
८९- भगवान्में मन कैसे लगे ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०३-पृ०१५
९०- भगवान् श्रीरामके राज्यकालमें अयोध्याका वैभव (श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	सं०१०-पृ०२१
९१- भगवान्से नाता जोड़नेका महत्त्व (दिव्यज्योति पूज्या देवकी माताजी) [प्रेषक—श्रीअरविन्द शारदाजी]	सं०१२-पृ०३०
९२- भजन क्यों नहीं होता ? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०५-पृ०१३

विषय	पृष्ठ-संख्या
९३- भाग्यका मारा [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०८-पृ०३८
९४- भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान् शिव	
(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय नार्मदेय,	
एम० ए०, पी०-एच० डी०)	सं०३-पृ०३५
९५- भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ (डॉ० श्रीअशोकजी काले)	
[प्रेषक—श्रीरामदयालजी पोद्दार]	सं०७-पृ०४१
९६- भारतीय परम्परामें गोत्र एवं प्रवरका तात्पर्य (सुश्री रीना रघुवंशी,	
एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत), एम०फिल०)	सं०८-पृ०३०
९७- भारतीय संस्कृतिका मूलाधार—गोसेवा	
(श्रीपंकजकुमारजी झा, नव्य व्याकरणाचार्य)	सं०१०-पृ०४०
९८- भावनाओंपर नियन्त्रण (श्रीइन्द्रदेवजी सक्सेना)	सं०५-पृ०३८
९९- 'भावे हि विद्यते देवः'	
(दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)	सं०४-पृ०२२
१००- मनका संयम (श्रीगौतमसिंहजी पटेल)	सं०३-पृ०३०
१०१- मनको वशमें कैसे करें? (श्रीराधेश्यामजी चौडक) ...	सं०५-पृ०३२
१०२- 'मन क्रम बचन करेहु सेवकाई'	
(श्रीबालकृष्णजी कुमावत)	सं०७-पृ०२६
१०३- मनन करने योग्य ..	सं०३-पृ०४८, सं०४-पृ०४८, सं०५-पृ०४६,
सं०६-पृ०५०, सं०७-पृ०५०, सं०८-पृ०५०, सं०९-पृ०५०, सं०१०-	
पृ०५०, सं०११-पृ०४५, सं०१२-४६	
१०४- मनुष्यकी अधोमुखी प्रवृत्ति और उससे बचनेके उपाय	
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी	
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०६-पृ०१४
१०५- मस्तिष्क या हृदय? (श्री 'माधव')	सं०६-पृ०१८
१०६- माताके संस्कार (श्रीदीपचन्दजी सुथार)	सं०८-पृ०१९
१०७- मातृशक्ति गौ (श्रीविष्णुकान्तजी सारडा)	सं०५-पृ०३५
१०८- 'मानस पुन्य होहिं नहिं पापा' (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट्	
स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)	सं०१२-पृ०१०
१०९- मानसमन्दिर का स्वर्णकलश (डॉ० श्रीरामस्वरूपजी	
ब्रजपुरिया, विद्यावाचस्पति)	सं०७-पृ०३४
११०- मेरा कृष्ण (बहन श्रीरैहाना तैयबजी)	सं०८-पृ०१७
१११- रामकथामें मुसलिम साहित्यकारोंका योगदान	
(श्रीबद्रीनारायणजी तिवारी)	सं०५-पृ०२५
११२- 'राम नाम नरकेसरी'—तात्त्विक भावविमर्श	
(आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') ...	सं०७-पृ०२३
११३- 'लौ' (पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव',	
एम० ए०)	सं०५-पृ०१०
११४- वन्दनीय विद्वान्	
[प्रो० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय']	सं०१०-पृ०९
११५- विश्वासका फल	सं०६-पृ०२१
११६- वृद्धजनोंके प्रति युवाओंका कर्तव्य	
(श्रीइन्द्रमलजी राठी)	सं०४-पृ०२७
११७- वृद्ध माता-पिताकी सेवा (श्री श्रीकुमारजी मुँधड़ा) ...	सं०२-पृ०२४
११८- व्यवहारिक अध्यात्म	
[प्रेषक—हरिकृष्ण नीखरा (गुप्त)]	सं०१२-पृ०३१
११९- ब्रजमें (कुँवर श्रीब्रजेन्द्रसिंहजी 'साहित्यालंकार') ...	सं०८-पृ०१०
१२०- ब्रतोत्सव-पर्व	[चैत्रमासके व्रत-पर्व]—सं०२-पृ०४४,
[वैशाखमासके व्रत-पर्व]—सं०३-पृ०४३, [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व]—	
सं०४-पृ०४३, [आषाढमासके व्रत-पर्व]—सं०५-पृ०३९, [श्रावण-	
मासके व्रत-पर्व]—सं०६-पृ०४५, [श्रावणमासके व्रत-पर्व]—सं०७-	

विषय	पृष्ठ-संख्या
पृ०४५, [भाद्रपदमासके व्रत-पर्व]—सं०८-पृ०४५, [आश्विनमासके	
व्रत-पर्व]—सं०९-पृ०४५, [कार्तिकमासके व्रत-पर्व]—सं०१०-पृ०४५,	
[मार्गशीर्षमासके व्रत-पर्व]—सं०११-पृ०३९, [पौषमासके व्रत-पर्व]—	
सं०११-पृ०४०, [माघमासके व्रत-पर्व]—सं०१२-पृ०३९, [फाल्गुन-	
मासके व्रत-पर्व]—सं०१२-पृ०४०	
१२१- शास्त्रीय दिनचर्याका अनुकरण ही श्रेयस्कर	
(डॉ० श्रीकमलकान्तजी तिवारी)	
[प्रेषक—पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री]	सं०९-पृ०३४
१२२- शिवजी भैया [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)	
[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०७-पृ०३८
१२३- शुभ नहीं, अशुभ कार्योंको टालते रहो	
(श्रीसीतारामजी गुप्ता)	सं०८-पृ०२६
१२४- श्रद्धा संस्कृतिका कवच है (श्रीरामनाथ 'सुमन') ..	सं०५-पृ०१६
१२५- श्रीप्रेमरामायण महाकाव्यमें सेवाधर्म (श्रीसुरेन्द्रकुमारजी	
रामायणी, एम०ए०, एम०एड०, साहित्यरत्न)	सं०६-पृ०२६
१२६- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	सं०११-पृ०४६
१२७- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	सं०११-पृ०४९
१२८- श्रीमद्रामेश्वरम् [श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग]	
(आचार्य श्रीरामरंगजी)	सं०९-पृ०२९
१२९- श्रीराधाकृष्णकी दैनन्दिनी लीला (श्रीराधाबाबा)	
[प्रेषिका—सुश्री शैवालनी]	सं०१०-पृ०२५
१३०- सच्चरित्र और सेवा (श्रीकृष्णनारायणजी राजपूत) .	सं०२-पृ०३८
१३१- सच्चा जीवन-दर्शन (श्रीराजेशजी माहेश्वरी)	सं०९-पृ०३२
१३२- सच्ची तीर्थयात्रा	सं०१२-पृ०११
१३३- सच्ची भक्ति (श्रीशरदचन्द्रजी पेंढारकर)	सं०९-पृ०४०
१३४- 'सत संगति दुर्लभ संसार'	
(वैद्य श्रीभगवतीप्रसादजी शर्मा)	सं०७-पृ०२९
१३५- सनातन धर्मके अकाट्य मन्त्र-प्रयोग (ब्रह्मलीन अनन्तश्रीविभूषित	
पूर्वाम्नाय गोवर्धन-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी	
श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज)	सं०१२-पृ०१४
१३६- सन्त उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी	
श्रीशरणानन्दजी महाराज)	सं०२-पृ०४२, सं०४-पृ०२४,
सं०५-पृ०३७, सं०७-पृ०४२, सं०८-पृ०४०, सं०९-पृ०४२,	
१३७- सन्त कबीरका चिन्तन-संसार	
(श्रीकन्हैयासिंहजी विशेष)	सं०१०-पृ०२७
१३८- संत श्रीगाङ्गेजी महाराजका सेवाभाव	सं०२-पृ०३४
१३९- सब कुछ भगवद्रूप	सं०९-पृ०१३
१४०- 'सब तें सेवक धरमु कठोर'	
(डॉ० श्रीभगवान दासजी पटैया)	सं०२-पृ०२६
१४१- सबमें आत्मभाव	सं०४-पृ०२८
१४२- समाजकी सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०४-पृ०३६
१४३- सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत	सं०९-पृ०१७
१४४- संसार-जय	
(पं० श्रीरामदयालजी मजूमदार, एम०ए०)	सं०४-पृ०१०
१४५- संसारमें सार क्या है?	
(स्वामी श्रीचिन्दानन्दजी महाराज 'सिहोरवाले') ...	सं०३-पृ०११
१४६- साधक अभिमान न करे (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी	
श्रीशरणानन्दजी महाराज)	सं०१०-पृ०३७
१४७- साधक निरन्तर अपनेको देखे (नित्यलीलालीन श्रद्धेय	
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	
[प्रेषिका—सुश्री कविता डालमिया]	सं०९-पृ०१४

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१४८-साधकोंके प्रति—(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	सं०३-पृ०२१, सं०४-पृ०१९, सं०५-पृ०१८, सं०६-पृ०२२, सं०७-पृ०१९, सं०८-पृ०२०, सं०९-पृ०२०, सं०१०-पृ०१८, सं०११-पृ०१७, सं०१२-पृ०१५	(६) जरूरतमन्द लोगोंकी सेवाका लक्ष्य (श्रीमती विजया बेडेकर)	सं०२-पृ०५०
१४९-साधन अनेक साध्य एक (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०११-पृ०१२	१५७-सेवा, जप, ध्यान, प्रेम तथा व्याकुलता (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०४-पृ०६, सं०५-पृ०६
१५०-साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	सं०४-पृ०२५, सं०९-पृ०२७	१५८-सेवा-दर्शन (स्वामी श्रीरामराज्यमजी)	सं०२-पृ०८
१५१-साधनोपयोगी पत्र	सं०३-पृ०४०, सं०४-पृ०४१, सं०५-पृ०४०, सं०६-पृ०४४, सं०७-पृ०४३, सं०८-पृ०४३, सं०९-पृ०४३, सं०१०-पृ०४३, सं०११-पृ०३७, सं०१२-पृ०३७	१५९-सेवा-धर्म (डॉ० श्रीनरेशकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०)	सं०२-पृ०३१
१५२-सारा समय परमोपयोगी बनानेका साधन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) ..	सं०९-पृ०६	१६०-सेवा—प्रश्नोत्तर (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	सं०२-पृ०१६
१५३-सेवा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	सं०२-पृ०१२	१६१-सेवा ही सबसे बड़ा धर्म और पूजा है (श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद)	सं०६-पृ०२९
१५४-सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र')	सं०२-पृ०३५, सं०३-पृ०३८	१६२-सेव्य, सेवा और सेवकका अन्तस्सम्बन्ध (डॉ० श्रीनरेन्द्रनाथजी ठाकुर, एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम० एड०, पी-एच० डी०)	सं०२-पृ०१४
१५५-सेवाकी पगडण्डियाँ (वैद्य श्रीबदरूद्दीनजी राणपुरी) ...	सं०२-पृ०४३	१६३-सौ करोड़ रुपयोंका दान [प्रेरक प्रसंग] (श्रीमहावीरप्रसादजी नेवटिया)	सं०१२-पृ०९
१५६-सेवाके प्रेरक प्रसंग—		१६४-स्वधर्म निधनं श्रेयः (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	सं०११-पृ०७
(१) मातृसेवाका दृष्टान्त (स्वामी श्रीआत्मश्रद्धानन्दजी) [प्रेषक—अरुण चूड़ीवाल]	सं०२-पृ०४५	१६५-हमारी आवश्यकता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	सं०११-पृ०३२
(२) सपूत सनातनकी मातृसेवा	सं०२-पृ०४६	१६६-हमारी प्राचीन वैमानिक-कला (श्रीदामोदरजी झा, साहित्याचार्य)	सं०४-पृ०२९
(३) वृद्ध-सेवाका सुपरिणाम (नेन्द्रे कुमार शर्मा) ..	सं०२-पृ०४७	१६७-हरखूकी माँ [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]	सं०९-पृ०३८
(४) गोमाताकी सेवाने संकटसे बचाया (महाराजसिंह रघुवंशी)	सं०२-पृ०४८		
(५) साइकिलसवारकी निःस्वार्थ सेवा (देशराज) ...	सं०२-पृ०४९		

पद्य-सूची

१- 'किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार' [कविता] (श्रीबेताबजी केवलारवी)	सं०७-पृ०१०	७- विमल पन्थ [कविता] (श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)	सं०३-पृ०१८
२- गौकी स्तुति [कविता] (श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')	सं०७-पृ०३०	८- 'शरण तिहारी आयो' [कविता] (श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश')	सं०५-पृ०९
३- दीनबन्धु कृष्ण [कविता] (डॉ० पुष्पारानीजी गर्ग)	सं०९-पृ०३३	९- शिवमहिमा [कविता] (श्रीगनेशीलालजी शर्मा 'लाल')	सं०८-पृ०२३
४- भगवत्प्रेमसे हीन मानवका स्वरूप [कविता] (श्रीतुलसीदासजी)	सं०६-पृ०९	१०- सन्तवाणी [कविता] [रसिक संत श्रीसरसमाधुरीजी]	सं०९-पृ०३६
५- मन को बुहार [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	सं०३-पृ०२३	११- 'हरि तोरे दरसन केहि बिधि पाऊँ' [कविता] (श्रीतेजपालजी उपाध्याय)	सं०६-पृ०४०
६- 'मैं सेवक सीतापति मोरे' (पं० श्रीबाबूलालजी द्विवेदी, 'मानस मधुप', साहित्यायुर्वेदरत्न)	सं०११-पृ०१९	१२- हरिनाम हदै धरिए-धरिए [कविता] (श्रीरुद्रपालजी गुप्त 'सरस')	सं०२-पृ०११

संकलित-सामग्री

१- उपमन्युद्वारा भगवान् गौरीशंकरका स्तवन	सं०८-पृ०३	७- प्रार्थना	सं०३-पृ०३
२- एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें	सं०७-पृ०३	८- भक्त प्रह्लादद्वारा भगवान् नृसिंहकी स्तुति	सं०५-पृ०३
३- गीताका सन्देश—सबमें भगवद्-दृष्टि	सं०१२-पृ०३	९- भगवती तुलसीको नमस्कार	सं०११-पृ०३
४- चारों युगोंमें भगवान् विष्णुका ध्यान	सं०४-पृ०३	१०- 'राघो गौध गोद करि लीन्हों'	सं०२-पृ०३
५- देवताओंद्वारा भगवान् श्रीरामकी स्तुति	सं०१०-पृ०३		

प्रकाशनकी प्रक्रियामें—संस्कारप्रकाश

संस्कारका अर्थ है—दोषोंका परिमार्जन करना। जीवके दोषों और कमियोंको दूरकर उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थके योग्य बनाना ही संस्कारका उद्देश्य है। संस्कारोंसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। जिस प्रकार किसी मलिन वस्तुको धो-पोंछकर शुद्ध बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्णको तपाकर उसके मलोंको दूर किया जाता है और मलके जल जानेपर स्वर्ण विशुद्ध रूपसे चमकने लगता है, ठीक उसी प्रकार संस्कारोंके द्वारा जीवके जन्म-जन्मान्तरोंसे संचित मलरूप कर्म-संस्कारोंका शुद्धिकरण किया जाता है। यही कारण है कि हमारे सनातन धर्ममें बालकके गर्भमें आनेसे लेकर जन्म लेनेतक और फिर बूढ़े होकर मरनेतक संस्कार किये जाते हैं।

वर्तमानमें भारतीय जन-जीवनमें संस्कारोंका लगभग लोप हो गया है, लोग केवल उपनयन, विवाह और मृत्यु संस्कारसे ही परिचित हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, उपनयन, विवाह, अन्येषि आदि सोलह संस्कारोंका पूर्ण परिचय, उनकी वैज्ञानिकता तथा करानेकी प्रक्रियाका सांगोपांग वर्णन किया गया है। इसके द्वारा सामान्य जनतासे लेकर संस्कारोंको सम्पन्न करानेवाले पुरोहित वर्गतक विशेष लाभ उठा सकते हैं।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें परिशिष्ट प्रकरणके अन्तर्गत अधिमासव्रत, संक्रान्तिव्रत, अयनव्रत, पक्षव्रत, वारव्रत, प्रायश्चित्तव्रत तथा अन्तमें वटसावित्री, मङ्गला गौरी, संकष्टचतुर्थी, ऋषिपञ्चमी, शिवरात्रि आदि विभिन्न व्रतोंकी सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। मूल्य ₹ ५०

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर २६ एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹ २०

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—शास्त्रोंमें माघ, कार्तिक तथा वैशाखमासका विशेष महत्त्व है। इन महीनोंमें किये गये पुण्य अक्षय्य होते हैं। इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ ३५

श्रीसत्यनारायणव्रत (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायण-व्रत-कथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹ १२

गीता-दैनन्दिनी— (सन् २०१६) अब सीमित

संख्यामें उपलब्ध [मँगवानेमें शीघ्रता करें]

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

डाक खर्च

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ७० ₹ २५

” ” (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644),

तेलुगु अनुवाद (कोड 1714) मूल्य ₹ ७० ₹ २५

सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ५५ ₹ २५

पॉकेट साइज—प्लास्टिक आवरण (कोड 506)—गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ३० ₹ २०

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

जनवरी सन् २०१६ ('कल्याण' वर्ष १०)-का विशेषाङ्क—'गंगा-अङ्क'

कल्याणके जिन ग्राहकोंका सदस्यताशुल्क दिसम्बर मध्यतक जमा हो जायगा उन्हें 'गंगा-अङ्क' रजिस्ट्रीके द्वारा, तदुपरान्त शेष ग्राहकोंको क्रमानुसार वी०पी०पी० के द्वारा प्रेषित किये जानेका कार्यक्रम रहेगा। सदस्यताशुल्क भेजनेपर भी यदि वी०पी०पी० प्रेषित हो गयी है तो सहृदयतावश वी०पी०पी० छुड़ा लेनी चाहिये तथा प्रेषित रकमका विवरण भेज देना चाहिये। विशेषाङ्क प्रेषणकी सूचना SMS के द्वारा देनेका प्रयास रहता है अतएव अपना मोबाइल नं० update करा लेवें। कदाचित् ग्राहक बने रहनेमें असमर्थता हो तो सूचना प्रेषित करनेकी कृपा करें। किसी अनजान/कथित एजेन्टको सदस्यताशुल्क न देवें। नये ग्राहक भी वी०पी०पी० द्वारा अंक मँगा सकते हैं।

विशेष सुविधा—अब मासिक अंकोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भिजवानेकी सुविधा उपलब्ध है। वार्षिक ग्राहक सदस्यताशुल्कके अतिरिक्त ₹२०० (दो सौ) तथा पंचवर्षीय ग्राहक ₹१००० (एक हजार) जमाकर प्रत्येक माहका अंक रजिस्टर्ड डाकसे प्राप्त कर सकते हैं।

स्वयं ग्राहक बने रहें एवं इष्ट-मित्रोंको भी ग्राहक बनावें। नये वर्षमें उपहारस्वरूप देनेके लिये 'गंगा-अङ्क' सर्वोत्तम भेंट है।

सदस्यता-शुल्क—वार्षिक ₹ २०० अजिल्द (₹ २२० सजिल्द), पंचवर्षीय ₹ १००० अजिल्द (₹ ११०० सजिल्द)।

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription option** को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ०प्र०)

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	१५०	574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१६०	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१००
616	योगाङ्क (परिशिष्टसहित)	२००	1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२४०	791	सूर्याङ्क	१३०
636	तीर्थाङ्क	२००	789	सं० शिवपुराण	२००	584	सं० भविष्यपुराण	१५०
604	साधनाङ्क	२५०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
1773	गो-अङ्क	१७०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	१७५
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना अङ्क	१२०	1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	९०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२००	1189	सं० गरुडपुराण	१६०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	517	गर्ग-संहिता	१५०	1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजिल्द	६५
43	नारी-अङ्क	२४०	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००	1592	आरोग्य-अङ्क	२००
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	1362	अग्निपुराण	२००	1610	महाभागवत (देवीपुराण)	१२०
279	सं० स्कन्दपुराण	३२५	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१२५	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-पूर्वार्द्ध	१००
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२७०	1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-उत्तरार्द्ध	१००
1183	सं० नारदपुराण	२००	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०	1985	श्रीलिङ्गमहापुराणाङ्क-सानुवाद	२००
667	संतवाणी-अङ्क	१५०	42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०	1947	भक्तमाल-अङ्क	१३०
587	सत्कथा-अङ्क	२००				1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०

मासिक 'कल्याण' kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।